बसवेश्वर के चुने हुए वचन

वचन मंटप, बेलगाम

बसवेश्वर के चुने हुए वचन

संपादक :
मे. राजेश्वरय्या, एम. ए.,
हिन्दी विभाग,
मैसूर विश्वविद्यानिलय
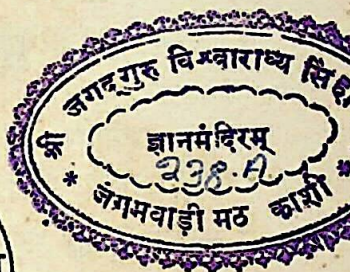
भूमिका :
रंगनाथ दिवाकर,
राज्यपाल,
बिहार

*

वचन मंटप, बेलगाम

प्रकाशक :

वी. सी. हेद्दूर शेट्टी, बी.एस सी., एल एल.बी.,

वकील व गौरव मंत्री, वचन मंटप,

बेलगाम

 १९५२ मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :

जी. आर. दासप्पा,

श्री रघुवीर प्रिंटिंग प्रेस,

मैसूर

RAJ BHAVAN,
PATNA
20—6—'52

चार शब्द

श्री बसवेश्वर कर्नाटक प्रांत के एक बड़े संत और समाज सुधारक थे। वे एक बड़े सुभाषितकार भी थे। उनकी प्रतिभा, धर्म-स्फूर्ति और आत्मानुभव उनके 'वचनों' में फूटफूटकर निकल आते हैं।

उनके कई चुने हुए वचनों का हिन्दी भाषांतर यहाँ प्रकट हो रहा है। मूल वचनों में जो सौंदर्य, सौरभ और रस हैं उनका यथा साध्य अंश इस भाषांतर में प्रतिबिंबित हुआ है। हिन्दी वाचक वर्ग को केवल इससे संतुष्ट नहीं होना चाहिए। यह केवल झाँकी मात्र है। कन्नड वचनों में कितना ऊँचा और गहरा ज्ञान पड़ा हुआ है इसकी कुछ कल्पना इस छोटी सी पुस्तक से प्राप्त हो सकती है।

कुल तीन सौ वचनकार हो गये हैं और उनमें से तीस तक स्त्री वचनकार थीं। आज भी हजारों वचन मिलते हैं और अनेक वचन ग्रंथ कन्नड में छप भी चुके हैं। इस प्रथम परिचय से यदि नई जिज्ञासा हिन्दी पाठकों में जाग्रत हो तो मैं समझता हूँ कि इस पुस्तक का प्रकाशन सफल हो गया।

रंगनाथ दिवाकर

प्रकाशकों की ओर से

वचन मंटप बेलगाम में स्थित एक संस्था है। कन्नड साहित्य का संशोधन व उसका प्रकटन इस संस्था का उद्देश है। संसार की सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकटन करने की इच्छा रखते हुए हाल में प्रांतीय भाषा कन्नड, राष्ट्रभाषा हिन्दी व अंतर्राष्ट्रभाषा अंग्रेजी में प्रकटन कार्य कर रही है। यह पुस्तक इसी आदर्श का फलस्वरूप है।

युगप्रवर्तक बसवेश्वर के इन वचनों के सुन्दर चयन करने में डा. वी. के. जवलीजी ने काफी कष्ट उठाया है। इन वचनों के हिन्दी में सुन्दर अनुवाद करने के अलावा अर्थ-कोश, प्रस्तावना आदि लिखने के द्वारा प्रो० मे. राजेश्वरय्याजी ने बहुत परिश्रम किया है। आदरणीय श्रीयुक्त रं. रा. दिवाकर जी ने तो अपनी सुन्दर व सदुपयोगी भूमिका से इस पुस्तक की शोभा बढ़ा दी है। अतः इन सभी महाशयों को संस्था की ओर से मैं सहर्ष हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकटन कार्य में श्री. मल्लेशप्पाजी मूरसाविरप्पाजी नामक सादरहल्ली बंधुओं ने आर्थिक सहायता दी है। हिन्दी अनुवाद कार्य में प्रो० गुरुनाथ जोशीजी व प्रो० हिरण्मयजी ने संस्था की सहायता की है। श्री रघुवीर प्रिंटिंग प्रेस के मालिक ने इस पुस्तक को इतना सुन्दर छापा है। इन सब के प्रति संस्था आभारी है।

बेलगाम
२८-६-१९५२

वी. सी. हेद्दूर शेट्टी
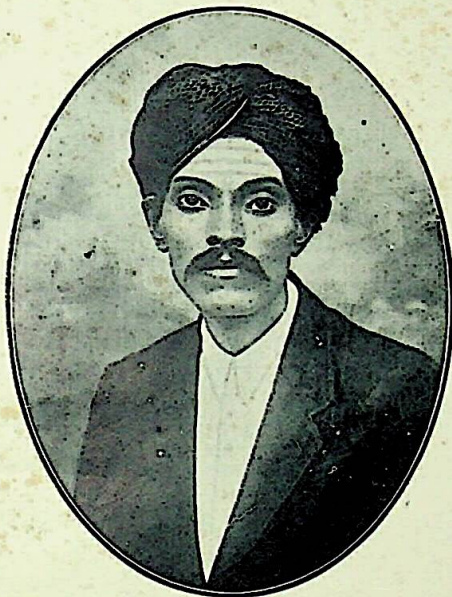
श्री. मल्लेशप्पा जी सादरहल्ली – हुब्बल्ली

वचन मंटप के दाताओं में से—

संपादकीय

युग प्रवर्तक बसवेश्वर की वाणी में समाज सुधारक, धर्म सुधारक और सुभाषितकाररूपी एक त्रिवेणी संगम पाते हैं। यदि एक साथ भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी दोनों को देखना हो तो आप बसवेश्वर में पा सकते हैं। वुद्ध, बसव (बसवेश्वर) और बापू जैसे महान आत्माओं का जन्म कभी जग में एक, कभी युग में एक हुआ करता है। खासकर बापू और वसव में एक तरह से फड़कतीहुई समानता को देख कर दाँतों तले उँगली दबाए बिना बनता नहीं है।

बसवेश्वर के समय की राजनीतिक और धार्मिक आंदोलनों की जानकारी रखना आवश्यक होगा।

११ वीं और १२ वीं शताब्दियाँ सारे संसार में धर्म के आंदोलन की दृष्टि से ज्यादा महत्व रखती हैं। योरप में पुनरुत्थान की गतिविधियों का सूत्रपात हो रहा था। भारत में शैव और वैष्णव धर्मों का पुनरुत्थान जोर पकड़ता जा रहा था। उत्तर भारत में मुसलमानों का अड्डा जमता जा रहा था। दक्षिण भारत में शैव धर्म और विशेषतः दक्खन में वीरशैव धर्म का प्रचार खूब तेजी के साथ हो रहा था।

दक्खन के एक बहुत बड़े हिस्से पर चालुक्य संतति का राज जो

करीब २०० वर्षों से कायम रहा उसकी जड़ अब हिल चुकी थी। दक्खन के उत्तर में देवगिरी के यादव लोग और दक्खन के दक्षिण में द्वारसमुद्र के होयसल लोग शक्तिशाली होते गये। नारमुडितैल या त्रैलोक्यमल्ल नामक चालुक्य राजा के यहाँ एक साहसिक सेनापति और मंत्री हुआ। उसका नाम बिज्जल था। वह स्वामिद्रोही था। ई० ११६१ में राजा के विरोध में विद्रोह करके सिंहासन का बलापहार (Usurp) कर लिया और स्वयं राजा बन गया। कल्याण नगरी उसकी राजधानी बनी।

बसवेश्वर का जीवन

११ वीं शती में बिजापुर जिले के बागेवाडी में शैव-ब्राह्मण जाति के मादिराजा और मादलांबिका रहते थे। उनको करीब ई० ११२८ वैशाख सुदी तीज को एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम बसव रखा गया। यह लड़का बड़ा होशियार तथा होनहार प्रतीत हुआ। कहा जाता है कि धार्मिक प्रवृत्तिवाला होने के कारण उसने अपने बचपन में ही शैवागमों का अध्ययन किया। जब वह आठवें साल की उम्र को प्राप्त हुआ तब उसके मातापिताने उसे ब्राह्मणों के यहाँ प्रचलित मताचार (Religious rites) के अनुसार उपवीत संस्कार करने की तैयारियाँ कीं; पर बेकार! बसवने उस उपवीत को 'कर्मलता' कहकर वैदिक धर्म को कर्मकांड प्रधान बताकर उस उपवीत का धारण नहीं किया।

साथ ही बसवने अपने को शिवजीके एक विशेष प्रकार का भक्त घोषित किया।

अब बसव से घर में नहीं रहा गया। वह घर से बिदा होकर पास के कप्पडी गाँव पहुँचा। मालपहारी और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित संगमेश्वर को अपना आराध्य देवता मानकर आध्यात्मिक अध्ययन में लग गया। ऐसा प्रसिद्ध है कि वहाँ उसे जातवेद नामक एक पहुँचे हुए मुनि का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

यह बताया जा चुका है कि उस समय कल्याण देश का राजा बलापहारी बिज्जल था। उसके प्रधान मंत्री का नाम था बलदेव। वह रिश्ते से बसव का मामा लगता था। उसने बसव की प्रतिभा और साहस से प्रभावित होने के कारण अपनी पुत्री गंगाम्बिका का विवाह बसव से करा दिया। इसके पश्चात् कुछ ही दिनों में बलदेव स्वर्ग सिधार गया। तब तक बिज्जल भी बसव के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित रहा। तो राजा ने बसव को कल्याण राज्य के प्रधान मंत्रित्व स्वीकारने के लिये बुलावा भेजा। बसव अब दुविधा में पड़ा। जहाँ प्रधान मंत्री-पद स्वीकारने से शैवधर्म के खूब प्रचार करने में सुविधा थी वहाँ सारे कल्यांण के राजकाज में अपने को खपाने से अपने आध्यात्मिक जीवन में धक्का पहुँचने का डर भी था। राजा बिज्जल के बहुत मनाने से बसव मान गया और प्रधान मंत्री बना।

राजा के पास अपने दूसरे मंत्री सिद्दण्णा की उदारता से दत्तक में ली गयी एक कन्या थी। उसका नाम नीलांबिका था। राजाने बसव को और प्रसन्न रखने के लिये नीलांबिका की शादी उससे करा दी। बसवने दिलोजान से कल्याण नगरी के कल्याण के लिए अथक परिश्रम किया। राज्य के शासन में कई सुधार लाया। देश को संपन्न बनाया और राजकोष को संवृद्ध किया। राजाने अपने प्रधान मंत्री के इन कार्यों पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की; परन्तु यह प्रसन्नता अधिक दिनों तक रही नहीं। क्यों कि राजा शक्की मिजाज का आदमी था। याद रखना चाहिए कि राजा बिज्जल स्वयं बलापहारी होने के नाते स्वामिद्रोही था। अलावा इसके राजशक्ति किसी को भी अधिक उन्नत नहीं देखना चाहती है। यहाँ तो बसव लोकप्रिय बनता जा रहा था। विशेषतः बसव के सामाजिक एवं धार्मिक सुधार अत्यंत क्रांतिकारी थे। बसव जाति की रीढ़ तोड़कर एक ज्यात्यातीत राष्ट्र(Secular State) का निर्माण करने लगा। धर्म व्यवहार योग्य बना दिया जाने लगा। 'अनुभव मंटप' की नींव डाली गयी। भारत के कोने कोने से लोग बसव के यहाँ खिंचे आने लगे। वीरशैव धर्म का प्रसार व प्रचार दिन दो गुना और रात चौगुना होने लगा। राजा अब सचमुच बसव से भय खाने लगा। इसलिए वह बसव को दबाने के लिए समय की ताक में रहा।

ब्राह्मण कुलोत्तम मधुवरस की पुत्री का विवाह अस्पृश्य

जाति के हरलय्या के पुत्र से बसवने कराया। राजा आग बबूला हो गया। ब्राह्मण देवताओं में खलबली मची। प्रजा को भड़काया गया। बसवने प्रजा को बहुत समझाया; पर बेकार। बसव अपने मंत्री पद को पटककर कूडल संगम देवता के मंदिर की ओर रवाना हुआ। इससे बसव के अनुयायियों को राजा पर क्रोध हुआ। इसी सिलसिले में इधर राजा बिज्जल का वध हुआ; उधर बसव अपने इष्ट देवता संगमेश्वर में ऐक्य हुआ। गांधीजी जैसे बड़े बड़े लोग अपने ही सिद्धांत के शिकार आप बने हैं और ठीक वैसे ही बसव भी अपने ज्यात्यातीत राष्ट्र सिद्धांत का शिकार करीब ११६८ ई० में आप बना!

बसव तथा समाज सुधार:—

१२ वीं शती में वर्णभेद, जातिभेद, लिंगभेद एवं वृत्ति-भेदरूपी कराल साँप अपनी हजारों जिह्वाओं से मानव समाज को यत्र तत्र सर्वत्र डस रहा था। अंधश्रद्धा का अंधकार दश-दिशाओं में फैला हुआ था। अर्थशून्य कर्मकांड के बोझ से मानव समाज की रीढ़ झुककर अब टूटने को थी। संक्षेप में कहना हो तो कह सकते हैं कि जीवन एक अभिशाप बना था।

वर्णभेद अपनी प्रारंभिक दशा में भले ही वैज्ञानिक रहा हो परंतु इस समय वह बिलकुल अवैज्ञानिक-सा बना था। क्यों कि अब वर्णभेद का आधार गुण, शील, विद्या न रह करके

केवल जाति ही उसका एक मात्र आधार बनी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के यहाँ पैदा होनेवाला कितना ही गुणहीन विद्याविपन्न और चरित्रहीन क्यों न हो, वह ब्राह्मण कहा जाता था और समाज रचना के उच्च पद पर उसे बिठाकर उसका सम्मान किया जाता था! ठीक वैसे ही किसी शूद्र के यहाँ पैदा होनेवाला कितना ही गुणशील, विद्यासंपन्न और चरित्रवान क्यों न हो वह शूद्र ही कहा जाता था और समाज रचना के निचले पद पर उसे ठुकराकर उसका अपमान किया जाता था!!

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक ये चारों वर्ण हजारों जातियों का मायका बने। इससे समाज बेढ़ब बना। मानवता की बलि हो गयी। आदमी आदमी के बीच की इस असमानता के कारण द्वेष का तांडव होने लगा और घृणा फैलने लगी। जनता विनाश की ओर बढ़ी जा रही थी।

तभी तो बसव ने जाति की रीढ़ को ही तोड़ने का बीड़ा उठाया। उसने एक ऐसे जात्यातीत राष्ट्र की कल्पना की जहाँ अंतर्जातीय भोजन हो और अंतर्जातीय विवाह हो। सामाजिक दृष्टि से कोई किसी से बड़ा न रहे और कोई किसी से छोटा न रहे। याद रखना चाहिए कि अभी अभी भारतने जात्यातीत राष्ट्र बनने की दिशा में जो कदम उठाया है वह कोई आठ सौ वर्ष पहले बसव से अमल में लाया गया था। बसव ने जोरदार शब्दों में कहा :—

"हत्यारा ही अंत्यज है, अभक्ष्य खानेवाला ही चांडाल है।
जाति किस चिड़िए का नाम है?
नहीं तो उन हत्यारों और चांडालों की जाति है कौनसी?"

कुछ लोगों को संदेह हो सकता है कि बसवने वीरशैव धर्म के प्रचार करने के द्वारा वीरशैव नामक एक जाति का निर्माण किया। अतः वह जिस जाति नामक गड्ढे से पार उतरना चाहता था उसीका शिकार आप बना! यहाँ लोग भूलते हैं। बसव ने उस समय विद्यमान हजारों जातियों की संख्या के साथ एक और जाति जोड़ने की कोशिश कदापि नहीं की। ठीक इसके उल्टे समग्र जातियों को समूल नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया। हाँ, शिव भक्ति की डोरी में सबको बाँधना चाहा। जाति से कोई वीरशैव नहीं बन सकता था। गुण से, भक्ति से कोई भी वीरशैव बन सकता था। वीरशैव बनने के बाद किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। क्यों कि सह-भोजन और सगाई-संबंध जारी रहे। बसवने कहा :—

"कुल तो चाहे जो हो हमारा क्या? शिवलिंग युक्त ही कुलीन है।
शरणों में जाति सांकर्य हो जाने के बाद कौन उनके कुल
का छिद्रान्वेषण करे?

श्लो— शिवेजाता कुले धर्म पूर्वजन्म विवर्जितः
उमा माता पिता रुद्रो ईश्वरः कुलमेवचा ॥

हे कूडल संगम देव! इसके अनुसार उनके यहाँ प्रसाद ग्रहण

करूँगा, सगाई-संबंध करूँगा और उन शरणों पर विश्वास
भी रखूँगा।"

एक दूसरी जगह बसवने कहा है :—

"देव! हे देव! कछु बिनति सुनो मोरी
विप्र से लेकर अंत्यज तक चाहे जो हों
यदि वे शिवभक्त बने हैं तो उन सबको मैं समान
मानता हूँ"

गौर से देखने की बात यह है कि शिवभक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सब के आपसी ऊँच नीच के भेद-भाव को मिटाकर सबको, एक ही स्तर पर लानेवाली Leveller बनी थी। चेन्नय्या अछूत था, कक्कय्या डोहर था, किन्नरी बोम्मय्या सुनार था, मधुवय्या ब्राह्मण था ; पर ये सब समान माने गये शिव भक्ति के समतल सपाट मैदान में !

वृत्तिभेद एक दूसरा साँप था जिसने समाज को अत्यंत विषैला बना दिया था। एक ओर वह जाति सूचक थी और दूसरी ओर वह थी सामाजिक स्तर का मापदंड। आज भी हम देखते हैं कि लोगों में यह धारणा बनी हुई है कि मानसिक वृत्ति दैहिक परिश्रम से की जानेवाली वृत्ति से कहीं गुने ऊँची है। याने चहर दिवारी के भीतर बैठकर की जानेवाली क्लर्की बाहर खेत में की जानेवाली कृषि से बेहतर समझी जाती है।

बीसवी सदी में भी जब यह हाल है तब १२ वीं सदी की बात कौन कहे !

बसवने वृत्ति को न जाति-सूचक ठहराया और न किसी की उच्चता या नीचता का द्योतक। सभी वृत्तियों को आपस में एक दूसरे के बराबर माना। वेदों को पढ़कर शास्त्री बनना उतना ही महत्व रखता है जितना कि कपड़ों को धोकर धोबी बनना। शौचगृह शुद्ध करनेवाले की वृत्ति भी उतनी ही पवित्र है जितनी कि जंगम बनकर दीक्षा देना। तभी तो बसवने कहा :—

"लोहा गरमाने से लुहार बना, कपड़ा धोने से धोबी बना,
बुनने से जुलाहा बना, वेद पढ़ने से ब्राह्मण बना,
कानों से जन्म लेनेवाला कोई है इस संसार में ?"

अतः बसवने जोरदार शब्दों में बताया कि वृत्ति कदापि जातिसूचक नहीं होती है। वृत्ति गौरव या अगौरव सूचक भी होती नहीं है। वृत्ति ऊँच नीच नहीं होती है और न होनी चाहिए। सभी वृत्तियाँ गौरववान ही होती हैं और होनी भी चाहिए। इसी वृत्ति को आजीविका भी कह सकते हैं। याने वृत्ति एक जीवनोपाय है। और इसी जीवनोपाय को बसवने अपनी पारिभाषिक शब्दावली में 'कायक' कहा है। कायक बहुत सुन्दर और अर्थपूर्ण शब्द है। शरीर से किया जानेवाला परिश्रम 'कायक' है। दूसरे शब्दों में इसी को दैहिक परिश्रम कह सकते हैं। दुनियाँ जानती है कि बिना किसी जीवनोपाय से जीना मुश्किल है। क्यों कि अच्छा

या बुरा जीवन बिताने के लिए भी कम से कम जीवित रहना पड़ता है। जीवित रहने के लिए कोई न कोई जीवनोपाय नितांत आवश्यक हो जाता है। अतः वृत्ति का अगौरव नहीं करना चाहिए। हाँ, अमीरों के पास आजीविका का प्रश्न उतना कड़ा नहीं होता है। परंतु बसवने कहा कि यह अमीरी या गरीबी का प्रश्न नहीं है। यह स्वावलंबन का, स्वतंत्रजीवन का सवाल है। स्वावलंबन की एक झलक पर कुबेर का सारा कोष निछावर करने योग्य हो जाता है। जो आदमी आर्थिक दशा से स्वतंत्र रहता है वह अपने विचारों में भी स्वतंत्र रह सकता है। विचार स्वातंत्र्य तथा वाक् स्वातंत्र्य ही आदमी को आदमी बनाते हैं। चाहे लखपति हो चाहे भिखपति हो किसी को भी परान्नभोजी (Parasite) नहीं बनना चाहिए। क्यों कि इससे बदतर जीवन दूसरा नहीं है। आजीविका पर प्रत्येक मानव का हक होता है। अपने पेट के लिए अपनी कमाई से बेहतर चीज और क्या हो सकती है? अपनी कमाई की रोटी में जो स्वाद एवं आनंद मिलते हैं वे पराये की मिठाई में भी कहाँ मिलें? गांधीजी तो बराबर कहा करते थे कि हर एक आदमी को प्रतिदिन कम से कम आठ घंटों का दैहिक परिश्रम करना चाहिए। दैहिक परिश्रम किये विना जो भोजन किया जाता है वह परान्नभोज है। अतः वह स्तेय है, चोरी है। गांधीजी ने यह भी कहा था कि धनोपार्जन का अधिकार किसी को भी नहीं। जो आदमी आजीविका से अधिक

धन लेता है और स्वार्थ से उसका संचय कर लेता है वह चाहे जान में हो या अनजान में दूसरों की आजीविका छीनता है। अतः यह भी स्तेय है, चोरी है। कोई आठ सौ वर्ष पहले बसवने इसी सिद्धांत को कार्यगत किया था। उसने यह भी कहा था कि भिक्षावृत्ति कोई वृत्ति नहीं है और वह जीवन के लिए एक अभिशाप है। जंगम लोगों के लिए भी कायक करना अनिवार्य था। क्यों कि अपनी ओर से भगवान को वही चीज अर्पित करने योग्य होती थी जो अपनी नीजी कमाई की हो। बसवने इस कायक पर धार्मिक मुद्रा का जादू चढ़ा दिया था। बसव के अनुसार हर एक आदमी को प्रतिदिन कायक करना पड़ता था। अपने लिए कायक चुनने में वह स्वतंत्र था। उसके बाद ऋजु मार्ग में ही उसे अपना कायक करना पड़ता था। विशेषतः कायक में तृप्ति की भी बात थी। उस दिन के लिए अपने या अपने परिवार के लिए जितना चाहिए था उतना ही कमा लेना पड़ता था। उससे ज्यादा कमाना साधु नहीं था। फिर उस दिन की कमाई को सबसे पहले भगवान शंकर के लिए अर्पण करना पड़ता था। यह समझा जाता था कि भगवान इससे प्रसन्न होकर प्रसाद के रूप में उस चीज को लौटा देगा। तब उसका ग्रहण करके उस दिन की गुजार से मुक्त होता था। उसे न कल की फिक्र होती थी और न निराशा की भावना ही जगती थी। भगवान पर भरोसा रखकर और उसीका गुणगान करते हुए रात को सो जाना पड़ता था। उदाहरण के लिए बसव के एकाध वचन लीजिए :—

"सुवर्ण में से एक रेखा, साड़ी में से एक धागे को
आज के लिए या कल के लिए चाहिए करके उसकी
अपेक्षा करूँ तो,
तुम्हारी सौगंद! तुम्हारे पुरातन भक्तों की सौगंद!"
"मैं अपने तन के तिलमिलाने से डरकर तुम से 'बचाओ'
नहीं कहूँगा।
जीवनोपाय से डर खा कर मैं तुमसे याचना नहीं करूँगा।
'यद् भावं तद् भवति': संकट आवे चाहे संपद् आवे–
'चाहिये ; नहीं' नहीं कहूँगा ;
हे कूडल संगम देव! न तुम्हारा मुँह ताकूँगा और न
मनुजों से माँगूंगा ; सौगंद है तुम्हारी सौगंद है!"

तिस पर "अगर मैं 'मृडदेव प्रणाम' कहकर भीख माँगने जाऊँ तो तुम वहाँ उनसे 'आगे चल देव' कहाओ प्रभु।"

सामाजिक विषमता को दूर करने में और समता की स्थापना करने में बसव के कायक की यह योजना कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के सिद्धांत से भी उदात्त रही है। उदात्त इसलिए कि कायक भगवान के लिए किया जाता था। हर एक दिन की कमाई भगवान के लिए पहले चढ़ायी जाती थी और बाद को भगवान से प्राप्त प्रसाद के रूप में उसका ग्रहण किया जाता था। जब भगवान के लिए चढ़ाना पड़ता था तब ऋजु मार्ग से ही आजीविका

कमानी पड़ती थी। अतः धर्म की मोहर कायक पर लगाई गयी थी। न अमीर न गरीब परान्नभोजी बनता था। हर एक आदमी उद्यमी होता था। इससे सुंदर समाज की आर्थिक व्यवस्था और क्या हो सकती है? क्या बीसवी सदी का समाजवाद या साम्य-वाद बसव के इस 'कायकवाद' से होड़ ले सकता है? तभी तो सभी ने मुक्त कंठ से कहा है कि "कायक ही कैलास" है! याने किसी भी उद्यमी तथा धर्मभीरु आदमी को अपने कायक के अच्छी तरह से करने में ही स्वर्ग-सुख का आनंद प्राप्त होना चाहिए। इस तरह बसव मर्त्यलोक पर ही कैलास को उतार लाया!

लिंगभेद तो उस समय इतना किया जाता था कि कोई क्या कहे! धार्मिक क्षेत्र में कौटुंबिक जीवन को कोई मान्यता नहीं दी गयी थी और वहाँ स्त्री तो खासकर बाधक समझी गयी थी। स्त्री को धर्म ग्रंथों के अध्ययन की मनाही थी। वह मुक्ति पाने योग्य नहीं समझी गयी थी। सारे संसार की खराबी की एक मात्र मायका स्त्री मानी गयी थी।

ऐसे समय पर बसवने स्त्रियों को तार दिया और अबलाओं को बिलकुल सबलाएँ बना दीं; लिंगभेद को हटा करके स्त्री को पुरुष के समान घोषित किया। धर्म ग्रंथों के अध्ययन की कैद को उठा दिया और वह बाधक नहीं बल्कि साधक मानी गयी। मुक्ति के अधिकारी ठहरायी गई। कौटुंबिक जीवन को धार्मिक क्षेत्र में भी

काफी मान्यता दी। बसवने कहा है कि "सतिपतियों की समरस भक्ति को भगवान शंकर सानंद स्वीकारते हैं।" स्वयं बसव शादी-शुदा था और उसके अनुयायियों में से मोलिगे मारय्या आदि दर्जनों विवाहित थे। मान्य दिवाकरजीने बताया है कि उस समय कोई तीस स्त्री वचनकार थीं। महादेवीजी तो लोक प्रसिद्ध हैं। महादेवीजी को तो बसव आदि सभी शिवशरणोंने "अक्क" याने 'बड़ी बहन' कहकर उनके प्रति अपना गौरव सूचित किया है।

इस तरह बसवने समाज का सुधार उसके हर एक पहलुओं को ले ले कर किया है। अतः वह सर्वांगीण सुन्दर बन पाया।

बसव तथा धार्मिक सुधार :—

१२ वीं सदी का धार्मिक वातावरण हद से ज्यादा दूषित रहा। कर्मकांडों के बोझ से धर्म दब गया था। अंधश्रद्धा और अज्ञान के कारण धर्म का स्वच्छ रूप कहीं भी देखने नहीं मिलता था। अर्थहीन बाह्याचरणों की धूम मची थी। बात बात पर जप-तप, यज्ञ-याग, व्रत-उपवास और तीर्थयात्रा का राग आलापा जाता था। कभी कभी मारी मसानी आदि देवताओं के लिए बेकसूर भेड़-बकरों की बलि चढ़ाई जाती थी। बाह्याचरण खोखले थे। कथनी जैसी करनी नहीं थी। कोई तैंतीस करोड़ देवताओं की पूजा होती थी! गृहदेवता (Domestic God) की प्रथा का प्रचलन

बीसवी सदी के इस विज्ञान युग में भी जब है तब उस अज्ञान युग की बात कौन कहे! स्वर्ग की कल्पना अजीब की गई थी। इस लोक-जीवन की अवहेलना की गई थी। संसार को एक सराया घर समझा गया था। हर किसी की आँखें ऊपर स्वर्ग की ओर खिंची रहती थीं। याने लोग पलायनवादी बने थे।

वसवने युग धर्म को पहचाना और वहुदेवोपासना का खंडन किया। देखिए :—

"कंघी एक देवता, धनुष की सिंजिनी एक देवता
पतेली एक देवता और टोंटेदार लोटा भी एक देवता!

यह एक देवता और वह एक देवता कहकर अपने पग धरने
के लिए भी खाली जगह न रख छोड़ी है!!"

ऐसा मालूम होता है कि भारत में जितने भारतीय थे उनसे भी ज्यादा उनके देवता लोग थे!

बसव ने बताया कि भगवान के नाम भले ही कई हों पर वह होता है एक ही——

"देव तो होता है एक ही; पर उसके नाम होते हैं कई;
परम पतिव्रता का पति होता है एक ही।"

भगवान के प्रति प्राणिबलि चढ़ाने के वदले में भक्ति चढ़ाने को कहा। ध्यान देने की बात है कि तब यज्ञ-यागादि के

समय ब्राह्मण लोग भी प्राणिवध करते थे। अश्वमेध यज्ञ का आखिर अर्थ क्या है? घोड़े की बलि देना है। बसवने अत्यंत मार्मिकता के साथ एक निर्दोष बकरे के प्रति अपने उद्गार यों निकाले हैं:--

" हे बकरा! बात की बात में अपने को मार डाला है करके तू रो, समझा।
वेदाध्यायियों के सामने रो, समझा!
शास्त्रज्ञों के सामने रो, समझा!........"

याद रखना चाहिए कि वेदों में, शास्त्रों में प्राणिबलि के लिए मान्यता दी गई है! तभी तो यहाँ बसव ने वेद और शास्त्रों पर व्यंग्य कसा है। जब अत्यंत विवेकी ब्राह्मणों की यह हालत थी तो अविवेकियों का वर्णन कौन करे! बसवने बड़े ही मर्मभेदी शब्दों में यों कहा है:—

" सूप के तले रख पूजा की जानेवाले छोटे छोटे देवों को भेड़ चढ़ाकर खुशियाँ मनाते हैं।

क्या उसकी रक्षा जिनसे भगवान रूठ गया है भेड़ कर सकेगी मर कर?...."

प्राणि हिंसा न करके भूतदया से काम लेने के लिए उसने भांति भांति से अनुरोध किया है। बुद्ध और गांधीजी ने तो बताया कि 'अहिंसा परमो धर्मः।' परंतु बसवने एक कदम आगे बढ़कर बताया कि "दया ही धर्म की जड़ है"। दूसरे शब्दों

अहिंसा की जड़ दया या करुणा (Sympathy) है। केवल हिंसा न करना दया नहीं है। बसव का यह लोकप्रिय वचन लीजिए :–

"दया रहित धर्म कौन है भाई ?
दया ही अपेक्षित है समस्त प्राणि जगत में,
दया ही धर्म की जड़ है भाई ;
ऐसों के बिना अन्यों को पसंद कूडल संगय्या करता नहीं है।"

बसवने न दुनियाँ को माया घर बताया, न संसार को सराया घर बताया और न स्त्री को मुक्ति मार्ग की मारक शक्ति ही बताया। उसने कथनी और करनी पर जोर दिया। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक की नयी व्याख्या सुनाई और जीवन को जीने योग्य बनाया। आदमी को पलायनवादी बनने से बचाया। आत्मपक्ष के साथ लोकपक्ष का समावेश किया। वैयक्तिक कल्याण के साथ लोक कल्याण की उदात्त भावना का प्रचार किया। जनता के दृष्टि कोण को ही बदल डाला। बसव ने कहा :––

"स्वर्गलोक मर्त्यलोक और नहीं हैं, जान लो भाई
सत्य बोलना ही देवलोक है और असत्य बोलना ही मर्त्यलोक।
आचार ही स्वर्ग है और है अनाचार ही नरक...."

यदि स्वर्ग नामक दूसरा लोक भी हो तो मर्त्यलोक के जीवन पर ही बसवने जोर दिया है :—

"हे कूडल संगमदेव !
सृष्टिकर्ता का टकसाला है मर्त्यलोक
यहाँ चलनेवाले सिक्के वहाँ भी चलते हैं,
यहाँ न चलनेवाले सिक्के वहाँ भी नहीं चलते हैं।"

बसवने कहा कि इन्द्रिय भोग करना कोई पाप नहीं है, विवाह करना कोई अपराध नहीं है; परंतु पर स्त्री पर नजर दौड़ाना बड़ा पाप है।

"इंद्रिय निग्रह करूँ तो उपजेंगे कई दोष
सामने आ आ कर बारंबार सताएँगी पंचेंद्रिय !"

ऐसे कई निदर्शन उसके पास थे जिन्होंने भोगी बन कर भी भगवान का साक्षात्कार किया हो !

"सतिपतिरतिसुख को क्या तजा सिरियाल चंगलाने ?
सतिपतिरतिसुख भोगोपभोगविलास को क्या तजा सिंधु बल्लालने ? "

इसके साथ साथ उसने लोगों को चेतावनी भी दी है :—
"आँख नहीं उठाना चाहिए पर स्त्री पर, मुहँ नहीं खोलना चाहिए पर स्त्री से, हरगिज मुहँ नहीं खोलना चाहिए, भेड़ के पीछे पीछे जानेवाले कुत्ते के समान नहीं बनना चाहिए। ऐसी एक लालसा के पीछे हजारों वर्षों तक नरक में गिरा देता है कूडल संगमदेव।"

ध्यान देने की बात यह है कि गांधीजी के ब्रह्मचर्य की व्याख्या इससे बिलकुल मेल खाती है।

जप-तप, याग-यज्ञ, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा आदि बाह्याचरणों की कड़ी आलोचना की है बसवने। क्या वीरशैव क्या वीरशैवेतर दोनों को फटकार सुनायी है। कबीर की याद एक बार अपने से हो आती है। बसव के अनुसार :—

"मृदु वचन ही समस्त जप है
मृदु वचन ही समस्त तप है
सद्विनय ही सदाशिव को रिझाने का तरीका है।"

ब्राह्मणों की आलोचना करते हुए कहा है :—

"हे प्रभो ! तुम्हें न समझने के कारण हाथ में घास पूस!
तुम्हें प्रणाम न करने के कारण गले में पाश !
मरोड़ना क्यों कर, धोना क्यों कर?
नाक पकड़कर डुबकी बरंबार लगाना क्यों कर?"

फिर वीरशैवों को फटकार सुनाते हुए कहा :—

"बाहर लेप कर क्या कर सकूँगा जबतक भीतर शुद्ध नहीं है?
बाहर रुद्राक्षी बांधकर क्या कर सकूँगा जबतक मन उन्हें स्पर्श करता नहीं है?
सैकड़ों पढ़कर क्या कर सकूँगा जब तक हमारे कूडल संगमदेव को मन से ध्यान नहीं करता हूँ।"

तब क्या करना चाहिए? बसवने इसका जवाब यों दिया है :—

"चोरी करो मत, हिंसा करो मत, झूठ बोलो मत;
कुपित होओ मत, औरों के प्रति घृणा करो मत;
अपनी स्तुति करो मत; औरों की निंदा करो मत;
अंतरंग शुद्धि यही है, बहिरंग शुद्धि भी यही है;
यही हमारे कूडल संगमदेव को रिझाने की रीत है।"

जाति, जनन, मरण, आदि पंच सूतक वास्तव में पंच भूत बनकर समाज पर हमला कर रहे थे। वैसे तो शैव सिद्धांत में इन सूतकों का खंडन किया गया है। बसवने तो इन सूतकों को दे मारा। क्यों कि इन सूतकों के मारे जनता हैरान हो गयी थी। सूतक से मुक्त, बाह्याडंबर से रिक्त, भक्ति से युक्त सुमधुर जीवन बिताने को कहा। भगवान का साक्षात्कार करने के लिए केवल भक्ति चाहिए:—

"राह भटक कर तड़पो मत, विभूति खरीद लाओ मत;
प्रसन्नता से एक बार "शिव प्रणाम" कहो भाई;
कूडल संगम देव भक्ति-लंपट होने के कारण
शिव शब्द लेने वाले को वह मुक्ति प्रदान करेगा।"

और वह भी निजी भक्ति होनी चाहिए :—

"अपनी भूख मिटाने व अपनी पत्नी से समागम करने के लिए
कोई अपने बदले में किसी दूसरे से कह सकता है क्या?

करनी चाहिए भक्ति, मन से;
करनी चाहिए भक्ति, तन से।"

इस तरह वसव ने धार्मिक क्षेत्र में युगांतर उपस्थित किया। यह सब अकेले बसव से कैसे साध्य हुआ यह पूछा जा सकता है। वसव केवल एक व्यक्ति नहीं था, वह एक समाज था। वसव ने एक खास गोष्ठी की स्थापना की थी और उसका नाम "अनुभव मंटप" रखा था। धार्मिक विषयों पर विचारविमर्शन करना इस संस्था का उद्देश था। इससे बसवने खूब लाभ उठाया।

बसव तथा "अनुभव मंटप"

वीरशैव धर्म को अध:पतन से बचाने की दृष्टि से वसवने "अनुभव मंटप" संस्था की स्थापना की। बौद्धधर्म, ब्राह्मणधर्म एवं जैनधर्मों के अध:पतन का एक जबर्दस्त कारण यह था कि वे धर्म बुद्धिबल के आधार पर खड़े किए गये थे। उन धर्मों में हृदयपक्ष से अधिक बुद्धिपक्ष का समावेश था। उनमें विशेषत: अनुभूति की कमी थी। पूरे के पूरे आदर्शवादी थे और उन आदर्शों की संभवता (Possibilities) और असंभवता (Impossibilities) पर ख्याल नहीं दिया गया था। तभी तो उन धर्मों का पतन आसानी से हो सका। इसी कमी को दूर करके और चिरंतन अनुभूति के स्पंदन को स्थान देने के लिए ही इस "अनुभव मंटप" का निर्माण बसवने किया। आदमी की पहुँच के बाहर के धर्म या आदर्श से वास्तव में क्या फायदा है? कुछ भी नहीं। उस तत्वशास्त्र

(Philosophy) से क्या लाभ जिससे किसी की भी रोटी पकती नहीं हो ?

अनुभव मंटप अनुभवी लोगों की एक मंडली थी। इस मंटप (मंडप)का आधार स्थंभ (pivot) स्वयं बसव था। अछूत चेन्नय्या, डोहर कक्कय्या, इसके वयोवृद्ध अनुभवी सदस्यों में थे। महा ज्ञानी अल्लम प्रभु इसके अध्यक्ष थे। अक्कमहादेवी स्त्री सदस्याओं की प्रतिनिधि थीं। अध्यक्ष का आसन 'शून्य सिंहासन' कहा जाता था! बसव के घर के एक बड़े दालान में यह गोष्ठी जमती थी। सभी सदस्य एक दूसरे को अपने भाई ही नहीं बल्कि अपने बड़े भाई समझा करते थे। बसवने तो अपने बारे में कह लिया है कि "मुझसे कोई छोटा नहीं है और शिवभक्तों से कोई बड़ा नहीं है। हे देव! तुम्हारे दास की दासी का दास हूँ मैं।"

एक दूसरी जगह बसवने कहा है :–

"पिता हमारे अछूत चैन्नय्याजी हैं
पितामह हमारे डोहर कक्कय्याजी हैं
प्रपितामह हमारे चिक्कय्याजी हैं...."

इस तरह उस अनुभव मंटप में जातिभेद, वृत्तिभेद, लिंग-भेद की गंध तक नहीं थी। इन सदस्यों के रहने के लिए कुछ ही दूर पर गुफाएँ बनी थीं और उन गुफाओं और कंदराओं को आज भी कल्याण नगरी के आसपास में देख सकते हैं।

भारत के धार्मिक इतिहास में यह संस्था अपूर्व और अनूठी रही है। क्यों कि अंतर्जातीय-भोजन, अंतर्जातीय-विवाह, अंतर्धर्मीय-चर्चा खुले तौर किये जाते थे। धर्म और आदर्शों की सामान्य जनता की दृष्टि से साध्यासाध्यताओं के वारे में चर्चा करके सुंदर तथा वढ़िया निर्णय पर पहुँचते थे। वसव के सारे सुधारों का टकसाला यही संस्था थी।

यह जानकर दुनियाँ को आश्चर्य होगा कि जैसे गांधीजी के पास देश-विदेश के लोग अपने से खिंचे आते थे वैसे ही वसव के पास भारत के कोने कोने से लोग आकर्षित हो कर आ घेरते थे। क्या पांड्य, क्या चोल, क्या गुजरात, क्या उत्कल और क्या नेपाल सभी जगह से लोग वसव के यहाँ आ जमते थे। कश्मीर का राजा तो राजगद्दी से अपना हाथ धोकर अनुभव मंटप का एक सदस्य वना और वही वादको 'मोलिगे मारय्या' नाम से प्रसिद्ध वना। लकड़हारे की वृत्ति को अपनाने के कारण उसे 'मोलिगें' नाम पड़ा था। उसकी रानी का भी नाम महादेवीजी था।

सकलेश मादरस दक्षिण का एक दूसरा राजा था जो सिंहासन त्याग कर वसव का शिष्य बन गया। वैसे ही आदय्या गुजरात का एक व्यापारी था, मरुल शंकरदेव कलिंग (ओरिस्सा) का था, मैदुन रामय्या आंध्र का था, एकांत रामय्या कुंतल का था। एकांत रामय्या के शिवभक्त बनने के संबंध में एक अबलूर शासन भी है। सोन्नलापुर से सिद्धराम आये।

स्त्रियों का भी एक दल बना था। महादेवियक्का, सत्यक्का, मुक्तायक्का मैसूर के बेल्लिगावी की थीं।

निचली जातियों से कई आये और अनुभव मंटप के सदस्य बने। वीरशैव दीक्षा के लेते ही सब आपस में समान बन जाते थे। रंच मात्र भी ऊँच नीचता का भेदभाव नहीं किया जाता था। शंकर दासिमय्या एक दर्जी, माचय्या एक धोबी, चौडय्या एक मल्लाह, अप्पण्णा एक नाई, बोम्मय्या एक सुनार. ककय्या एक चमार, चेन्नय्या एक अछूत थे।

इस तरह कुल कोई तीन सौ अनुभव मंटप के सदस्य थे। कोई तीस तक स्त्रियाँ थीं। वीरशैव धर्म के सिद्धांत-पक्ष (Theoretical side) और व्यवहार-पक्ष (Practical side) लेकर खूब वाद विवाद एवं तर्क वितर्क किये जाते थे। अपने वक्तव्य प्रकट करने में हर कोई स्वतंत्र था। अगर उन वाद विवादों तथा विषय के स्वरूप को देखना हो तो 'शून्य संपादने' नामक ग्रंथ में देख सकते हैं। यूनानी तत्ववेत्ता प्लेटो (Plato) की याद दिलाता है यह ग्रंथ! बहुत ही महत्व का है। अनुभव की वेदी पर विचारों के मंथन का सुंदर तथा एक मात्र निदर्शन है।

यज्ञ-यागादि में विश्वास रख कर पूजा करने देने वाले वेदों पर शैवागम एक सुधार लाये थे। उनके अनुसार यज्ञ-यागादि और प्राणिबलि माँगने वाली चीजें बंद कर दी गयीं; परंतु भगवान की पूजा मंदिर में करने दीं गयी थी। अनुभव मंटप इन

आगमों पर भी एक भारी सुधार लाया। चाहे घर में हो चाहे मंदिर में कहीं भी मूर्तिपूजा के लिए मंटपने अवकाश नहीं दिया। क्यों कि मंटपने कहा भगवान एक ही है और उसका आकार निराकार है! उपनिषदों के पूर्णत्व (Absolute) को इस तरह का एक भौतिक रूप देना भारी परिवर्तन ही था। मंटपने वैयक्तिक (prsonal) इष्ट लिंग की पूजा विधि पर जोर दिया। आखिर इष्ट लिंग क्या चीज थी? वह सार्वभौमिक समता (Universal levellcr) स्थापित करनेवाली एक जबर्दस्त माध्यम था। क्यों कि किसी भी जातिवाला लिंगदीक्षा से वीरशैव वन सकता था। और सबके साथ समानता का अधिकार व आनंद प्राप्त कर सकता था।

षट्स्थल सिद्धांत, पंचाचार आदि वीरशैव सैद्धांतिक पक्षों में भी काफी सुधार मंटप लाया। ज्ञान, भक्ति और कर्म के पारस्परिक बड़प्पन को मंटपने हमेशा के लिए मिटा दिया। सब को आपस में एक दूसरे के समान माना गया। इसी सिद्धांत को व्यावहारिक पक्ष में गुरु, लिंग और जंगम कहा जाता है। इन्हीं तीनों का समन्वित भाव गीता में भी मिलता है; पर वहाँ इतने सुव्यवस्थित व्यावहारिक रूप में नहीं। इन तीनों गुरु, लिंग और जंगम के प्रति त्रिविध दासोह के तन, मन और धन समर्पण करने का विधान मंटपने निकाला था।

वीरशैवों को धर्म के अनुशासन में रखने के लिए आत्मशुद्धि का एक जवर्दस्त उपाय किया गया था। वह "मुह्लिनावि-

गेय कायक" नाम से प्रसिद्ध था। मेखों से जड़े दो खड़ाऊँओं पर कड़ी धूप में घंटों भर पापी लोगों को खड़ा रहना पड़ता था! यह सजा किसी पर जबर्दस्ती से लादी नहीं जाती थी। जो लोग आत्मशुद्धि चाहते थे वे खुद 'मुल्लिनाविगेय कायक' वालें को अपने यहाँ बुलाकर उन खड़ाऊँओं पर खड़े हो जाते थे। मुल्लिनाविगेय कायक वाले शिक्षित (Trained) होने के कारण उन खड़ाऊँओं पर खड़ने का तरीका बताते थे। अतः कुछ खास लोगों के लिए यह एक कायक (आजीविका) भी रहा! आजकल के शिक्षित (Educated) समाज में एक ऐसे आत्मशुद्धि के विधि-विधान की कमी की ओर गांधीजी ने भी इशारा किया है।

बसव तथा दार्शनिकता

बसव एक पहुँचेहुए दार्शनिक एवं रहस्यवादी भी था। सर्वांतर्यामी भगवान के संबंध में उसके विचार यों थे—

"गाय को हर ले गये, ऐसा मत कहोजी, तुम्हारी दुहाई है।
रो धोकर चिल्लाओ मत, तुम्हारी दुहाई है।
हर किसी से यह कहते फिरते मत रहो, तुम्हारी दुहाई है।
क्यों कि कूडल संगमदेव एकोभाव होने के कारण
वहाँ खानेवाला भी संग है और यहाँ खानेवाला भी संग है!"

भगवान ने बनाया आदमी को और आदमीने बनाया जाति-पाँति को :—

"जमीन तो एक ही है अछूतों के आंगन व शिवालय के लिए
जल तो एक ही है शौचाचमन के लिए
कुल तो एक ही है आत्मज्ञानी के लिए।
हे कूडल संगमदेव! तुम्हारी थाह भी एक ही है थाह
लेनेवालों के लिए।"

भगवान भक्ति-लंपट होने के कारण अपने भक्त के हाथ में कठ पुतली हो जाता है:—

"जग को घेर लिया है तुम्हारी माया ने
और तुम्हें घेर लिया है मेरे मनने, यह तमाशा देखो!
तुम जग के लिए शक्तिशाली हो,
किंतु तुमसे शक्तिशाली हूँ मैं, यह जान लो प्रभु।
हे कूडल संगमदेव! गज दर्पण में समाजाने की भांति तुम
मुझ में समागये हो प्रभु!"

द्वैताद्वैत के सुन्दर सामंजस्य को बसवने यों बताया है:—

"क्या कहूँ मैं क्या कहूँ एक से दो हुओं का
क्या कहूँ मैं क्या कहूँ दो से एक हुए का

इस तरह बसव एक महान दार्शनिक एवं रहस्यवादी था।

बसव तथा वीरशैव धर्म

बसव और वीरशैव धर्म अविनाभाव हैं। बसव के बिना वीरशैव धर्म नहीं है और वीरशैव धर्म के बिना बसव नहीं है।

हालाँकि वीरशैव धर्म का प्रवर्तक बसव नहीं है; परंतु वह उसके पुनरुत्थान करनेवाला है। वह वीरशैव धर्म का एक मात्र विश्वसनीय प्रतिनिधि है। जो प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य के बारे में कहा जाता है वही बात बसव के साहित्य के संबंध में भी कही जा सकती है। याने भले ही वीरशैव धर्म गुम हो जाय और केवल बसव का बचन साहित्य बचा रहे तो वीरशैव धर्म का नुकसान शायद ही होगा !

बसव तथा कन्नड साहित्य

बसवने कन्नड साहित्य में एक क्रांति मचा दी। वह स्रष्टा भी था और द्रष्टा भी। केवल वचन साहित्य की सृष्टि नहीं की बल्कि अपनी दूरदृष्टि का परिचय भी दिया है। क्यों कि उसने उस समय प्रचलित संस्कृत के प्रकांड विद्वान होते हुए भी उसे अपनाया नहीं। जैसे बुद्ध और महावीरने संस्कृत को तजकर अपनी मातृभाषा पाली को अपने उपदेशों के लिए बरता था, ठीक वैसे ही बसवने भी अपनी तथा जनता की मातृभाषा को ही अपने उपदेशों का माध्यम बना लिया। कन्नड में संस्कृत के कई छंद अपनाये गये थे। बसवने उन संस्कृत छंदों का भी एक तरह से बहिष्कार किया। कन्नड के निजी छंद पुराने पड़ चुके थे। ध्यान देने की बात यह है कि बसव न कवि था और न कवि बनना चाहता था। अपने संदेश को जनता तक पहुँचाने के लिए एक माध्यम की जरूरत थी। वह गद्य से ज्यादा उपयुक्त चीज और

कथा हो सकती थी? तो बसवने गद्य को ही अपनाया; परंतु अपनी प्रतिभा और भावों की तीव्रता के कारण वह गद्य पद्य-सा बन गया और रह गया गद्य-काव्य (Poetic prose)! और वही बाद को 'वचन' नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनुभवामृत से कही हुई उक्ति को 'वचन' कहा गया। कन्नड साहित्य में इस तरह के वचन साहित्य का प्रवर्तक बसव ही है। बसव के समय में तथा उसके बाद वचनों की धूम मच गई। जैसे मान्य दिवाकरजी ने बताया है कि आज भी वचन लिखे जाते हैं। तीन वचनकार वचनकारों के सिरताज माने जाते हैं। वे हैं बसव, अक्कमहादेवी और प्रभुदेव। इन में भी काव्यत्व की दृष्टि से बसव के वचन सर्वोपरि ठहरते हैं। हाँ संगीतात्मकता तथा माधुर्य की दृष्टि से महादेवी के वचन अपने ढंग के हैं। वैसे ही ज्ञान की दृष्टि से प्रभुदेव के वचन बेजोड़ हैं। बसव के वचन कुल केवल एक हजार हैं। परंतु एक एक वचन एक एक हीरा है। बिहारी के दोहों के समान देखने में तो छोटे छोटे हैं; परंतु वे नावक के तीर के समान सीधे हृदय पर घाव कर जाते हैं। जैसे बिहारी की सतसई पर पचासों ग्रंथ लिखे गये हैं और सतसई साहित्य का सिलसिला भी जारी रहा ठीक वैसे ही बसव के वचनों पर पचासों ग्रंथ लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। वचन साहित्य का सिलसिला तो आज तक चला आया है। बसव की एकाध और कितावें भी हैं। "कालज्ञानद वचन", "शिखारत्न वचन" और "मंत्र गोप्य" वे कितावें हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि इन्हीं वचनकारों के कारण वचन साहित्य को मुक्त कंठ से "कन्नड वेद" और "कन्नड उपनिषद्" बताकर अपना गौरव सूचित किया है ! वचनकारों के प्रभाव से जो एक विचार क्रांति खड़ी हुई थी उसके कारण कन्नड साहित्य के उस युग को "विचार स्वातंत्र्य युग" भी कहा है। भारतीय साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य में भी कन्नड के वचन साहित्य को एक विशेष स्थान दिया जा चुका है। इसका सारा श्रेय असल में बसव को ही मिलना चाहिए।

जिस तरह तुलसी के हाथ में पड़कर अवधि और सूर के हाथ में पड़कर ब्रजभाषा अमर हो गयीं वैसे ही कन्नडभाषा भी बसव के हाथ में पड़कर अमर हो गयी है। कन्नड भाषा की शब्द-शक्ति एवं साधक की सिद्धि को यदि एक साथ देखना हो तो वचन साहित्य में देख सकते हैं।

बसव तथा उसका प्रभाव

वीरशैव लोगोंने बसव को दैवत्व तक पहुँचाकर उसे "नंदी का अवतार" बताकर ही अपना दम लिया है। यह तो जानी हुई बात है कि नंदी भगवान शंकर का वाहन-बैल है। चाहे जो हो हम तो कह सकते हैं कि अन्य महान आत्माओं के जैसे बसव अपनी मानवत्व से दैवत्व तक याने अपूर्ण से पूर्ण तक अपने जीवित समय में ही पहुँचा! बसव बसवेश्वर बना। बसव के समकालीन लोगों की बात को रहने दीजिए उसके परवर्ती

कविलोग तथा सभी वचनकारोंने वसव का नाम आदर से लिया है और उसकी स्तुति की है। वसव के संबंध में क्या कन्नड क्या तमिल दोनों भाषाओं में बड़े वड़े ग्रंथ लिखे गये हैं। पाल्कुरिके खोमनाथ का तमिल में लिखा ग्रंथ "बसव पुराण" बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का अनुवाद कन्नड में, संस्कृत में और अंग्रेजी में भी हुआ है। हरिहर, राघवांक, भीम कवि, चामरस, षडक्षरी, चेन्नबसव आदि बड़े बड़े कवियोंने बसव के प्रति अपना गौरव और प्रेम सूचित किया है।

वीरशैव लोगों के लिये तो बसव का पावन नाम तारक मंत्र सिद्ध हुआ है। बसव का नाम जैसे आदर, गौरव तथा श्रद्धा से लिया जाता है वैसे शायद ही और किसी का नाम लिया जाता हो! बसव जयंती हर साल कर्नाटक के कोने कोने में बड़े वैभव के साथ मनायी जाती है। जिस तरह तुलसी का नाम उत्तर भारत में लोकप्रिय है उसी तरह बसव का नाम वीरशैवों के होंठों पर उठते-बैठते, सुनते-बोलते, चलते-फिरते, सोते-जगते, नाचता है। बसव को 'अण्णा' याने बड़ा भाई भी कहते हैं। 'अण्णन बलग' नाम से कई संस्थायें प्रचलित हैं। बसव को "भक्ति भंडारी", "वचन वाङ्मयाचार्य", "वीरशैव मत सार्वभौम" और "जगज्जोति" आदि उपाधियाँ दे कर अपना प्रेम व आदर प्रकट किया है। वीरशैव धर्म का एक मात्र ध्रुवतारा (Beacon light) बसव ही है।

ऐसे महामना के वचनों का क्या अनुवाद हो सकता है। सो भी मुझ जैसे पामर से! वचन मंटप, बेलगाव के प्रोत्साहनने ही मुझ से यह टूटा फूटा अनुवाद कराया है। यह मेरा पहला अनुवाद रहा है। बस, केवल इतने से ही क्रोचे के उन आप्त वाक्यों— "चाहे जो करो; परंतु अनुवाद मत करो। क्यों कि अनुवाद मूल से या तो घटिया बनेगा या बढ़िया। लेकिन इन दोनों स्थितियों में वह मूल से सौ फी सदी मेल नहीं खायेगा।"— का अनुभव हो चुका। अतः विमर्शक लोगों से मेरी यही विनति है कि इसमें जो दोष हैं वे मेरे हैं और जो गुण हैं—यदि कोई हों—तो वे बसव के हैं ऐसा कृपया समझ लीजिएगा। इसमें छापे की गलतियाँ भी हैं! जो शुद्धि-पत्र दिया हुआ है वह भी पूर्ण नहीं है।

लिंगायत विद्याभिवृद्धि संस्था, धारवार की ओर से प्रकाशित तथा 'आधुनिक बसव' दिवंगत शि. शि. बसवनालजी से संपादित "बसवण्णनवर षट्स्थल वचनगलु" पुस्तक के आधार पर यह पुस्तक तैयार की गई है। इस पुस्तक के वचनों के ऊपर कोष्टकों में अंकित संख्यायें श्री० शि. शि. बसवनालजी की पुस्तक के वचनों की क्रम संख्याओं को सूचित करती हैं। कन्नड और हिन्दी जाननेवालों के उपयोग के लिए ऐसा किया गया है। इससे उनको यह जानने में सुविधा होगी कि अनुवादित अमुक वचन कन्नड के किस वचन का अनुवाद है। वचन के अंत में दी

हुई संख्यायें तो इसी पुस्तक के वचनों की क्रम संख्यायें हैं। स्वदेशी नुक्ता को रखकर विदेशी नुक्ता को जान बूझकर छोड़ देने की धृष्टता की है।

मान्य रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकरजीने अपने 'चार शब्द' के द्वारा हमें आशीर्वाद भेजे हैं। आप तो कन्नड में "वचनशास्त्र रहस्य" नामक बड़ा ग्रंथ लिखकर वचन शास्त्र साहित्य के विश्वस-नीय अधिकारी बने हैं। हिंदी के भी आप बहुत बड़े विद्वान हैं। आप ही की सलाह को आज्ञा मानकर इस पुस्तक में अर्थकोश और लंबा संपादकीय जोड़े गये हैं। आपके प्रति तो मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

इन वचनों के चयन करने में डा० वि. को. जवलीजीने काफी परिश्रम उठाया है। श्री. श्री. श्री. गविमठाध्यक्ष स्वामीजी मैसूर ने मुझे वचनों के सही अर्थ बताने की कृपा की है। अतः उनका मैं अत्यंत ऋणी हूँ। सर्व श्री० जी. सच्चिदानन्दनजी, एच. देवीरप्पाजी और टी. एस. श्याम रावजी से भी मैंने सहायता ली है। अतः आप लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्री रघुवीर प्रिंटिंग प्रेस के मालिक को भी अपने सहयोग के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ।

मैसूर
२०–६–१९५२

मे. राजेश्वरय्या

विषय सूची

चित्र

Shree Aswaroodh Basweswar

वसवेश्वर के चुने हुए वचन

भगवान के चाहने पर जगत की सृष्टि हुई

(१)

हे कूडल संगम देव ! जगत की सृष्टि
सलिल में निहित आग गाढ़े गुप्त निधि की भांति,
पौद में निहित रस की रुचि की भांति,
पुष्प में निहित परिमल की भांति,
और कन्या के स्नेह की भांति थी ॥ १ ॥

संसार को हेय समझो

(८)

हे कूडल संगम देव !
मैं करूं क्या ? मैं करूं क्या ? देखो तो सही
संसार सागर की तरंग मदमाती हो मुँह पर लहरें मार रही हैं !
क्या संसार सागर केवल छाती तक होता है ? बतावो न !
क्या संसार सागर केवल गले तक होता है ? बतावो न !
जब संसार सागर अपने मस्तक तक बढ़ गया है तब मैं क्या
बताऊँ प्रभु ?
हे प्रभो ! हे प्रभो ! मेरा आर्तनाद सुनो, मेरा आर्तनाद सुनो
॥ २ ॥

(९)

हे कूडल संगम देव!
चाँद सी कला मुझे संप्राप्त थी।
किंतु संसाररूपी राहुने सर्वग्रासी हो मुझे निगल लिया है!
मेरी काया आज ग्रहण-ग्रसित है।
जाने कब मुझे इस से मुक्ति मिले? ॥ ३ ॥

(१०)

हे कूडल संगम देव!
चूहादान में पड़े चूहे के समान है अपना संसार—
मरते दम तक नहीं छूटने का;
औरों को सताना मरते दम तक नहीं छूटने का है;
औरों का छिद्रान्वेषण करना मरते दम तक नहीं छूटने का है।
हाय हाय! ऐसे मनहूस संसार से मैं तंग आगया हूँ प्रभु!॥४॥

(११)

सर्प के साये में वास करनेवाले मेंढक की स्थिति अपनी हुइ न
हाय हाय! संसार व्यर्थ गया न!
हे कर्ता कूडल संगम देव! इन से बचाकर मेरी रक्षा
करो, प्रभु ॥ ५ ॥

(१२)

शूल पर का भोग क्या हुआ तो क्या?
यह रंग-बिरंगी दुनिया है सांप-संपेरे के स्नेह-सी।

हे महादानी कूडल संगम देव! जब अपनी ही आत्मा
अपना शत्रु बनगई है तब बाहरी बन ठन क्यों? ॥ ६ ॥

(१३)

संसाररूपी फंदे में फँसगया हूँ;
बचाओ, मुझे बचाओ!
सार नहीं है! सार नहीं है!!
हे कूडल संगम देव! तेरी दुहाई है! तेरी दुहाई है!!॥७॥

(१४)

मैं एक चाहूँ तो, वह एक चाहती है;
मैं इधर खींचू तो वह उधर खींचती है;
मुझे अलावा इसके दुःख देकर सताया था;
मुझे अलावा इसके पीड़ा देकर सताया था;
कूडल संगम देव से जा कर मिलने कोशिश करूँ तो
इस मायाने मुझे रास्ता भुला दिया था! ॥ ८ ॥

(१५)

जन्मने के लिए माता बन जन्मा था माया ने।
मोह के लिये पुत्री बन जन्म लिया था माया ने।
समागम के लिये स्त्री बन समाया था माया ने।
इस प्रकार भांति भांति से मुझे सताया है माया ने।

हे कूडल संगम देव! इस माया से अपना पिंड छुड़ाना
अपने बस की बात है नहीं;
आप ही मेरा पिंड छुड़ा सकते हैं, कृपया छुड़ाइये ॥ ९॥

(१७)

आज के लिये क्या और कल के लिए क्या कहकर
इस दग्ध पेट को पालने गया था मेरा संसार
नाना योनियों में आने की न लाज है
और न आगे मुक्ति पाने की युक्ति ही है!
हे कूडल संगम देव! इस माया ने सदाशिव का
ध्यान करने न देकर तावड़तोड मारडाला ॥ १० ॥

(१८)

हे कूडल संगम देव!
सच्ची व शुद्ध भक्ति का संपुट स्थिर न होने के कारण
मुझे जर जन जमीन दिखाकर,
टिंचक खिला रही थी तेरी माया;
टीञक खिला रही थी तेरी माया! ॥ ११ ॥

(२०)

संसाररूपी सर्प के छूने से पंचेंद्रिय विषयरूपी विष से
मैं भ्रांत होगया और पलटा खाकर गिरने ही वाला था।
हे कूडल संगम देव! किंतु मैं बच गया; क्यों कि उस समय
मैं "ॐ नमः शिवाय" मंत्र जपता रहा! ॥ १२ ॥

(२२)

सांसारिक क्लेश मिटेगा कब ?
मन में परिणाम होगा कब ? अपना क्लेश मिटेगा कब ?
हे कूडल संगम देव ! फिर मैं परम संतोष में रहूँगा कब ?
॥१३॥

(२६)

चूल्हे के जलने पर वहाँ ठहर सकते हैं बिना,
सारी धरा ही जलने लगे तो कहीं भी ठहर नहीं सकते हैं।
बाँध आप ही पानी पीने लगे, मेड़ आप ही खेत सफाचट
करने लगे,
नारी अपने ही घर में आप चोर बन चोरी करने लगे,
माता का दूध आप विष बन संतान को मौत देने लगे,
हे कूडल संगम देव ! तब मैं और किसको उलाहना दूँ ?॥१४॥

(२९)

अपना चित्त गूलर का फल है,
विचारिए तो उस में कोई सार नहीं है !
हे कूडल संगम देव ! आपने इस दिखावटी दुनिया में
मुझे भी एक रूप दे कर ठहराया है ॥ १५ ॥

४५

मैं हूँ अकेला : जलानेवाले हैं पाँच !
ऊपर से आग धधकती है: नीचे ठहरना मुश्किल है ।

हे कूडल संगम देव ! जब अनाथ बैल को बाघ हर ले जाता है
तब क्या उसकी रक्षा आप नहीं करेंगे ? ॥ १६ ॥

(४७)

कब मैं शिवभक्ति को कसकर देखूँगा ?
कब मैं शिवाचार को बूझकर जानूँगा ?
काम क्रोध, लोभ व मोह से घिर गया हूँ
क्षुधा तृष्णा व विकलता से दग्ध हूँ,
पंचेंद्रिय व सप्तधातु सता रहे हैं मुझे फूटी खपरैल बनाकर !
हे कूडल संगम देव ! हाय हाय ! क्या करूँ ?
मेरा आर्तनाद सुनो तो ॥ १७ ॥

(४८)

सता रहा है कायविकार,
साथ दे रहा है मनोविकार
और ललक रहा है इंद्रियविकार !
मैं बवंडर में भ्रमण कर रहा हूँ, कृपया डुबो दीजिए मत
हे कूडल संगम देव ! अन्य विषयों से न लगा रहे मेरा मन;
आप ही से वह लगा रहे;
आपके अनुपम सुखसार शरणों से मेरी यही बिनती है ॥ १८ ॥

(५३)

बेचारी गाय के पंक में फँसने पर
अपने हाथ-पाँव मारने के सिवा और क्या चारा है ?

शिव ! शिव !! गया, मैं धँसगया !!
मुझे आपके अपने मनोनुकूल निकालिए, प्रभु—
आखिर मैं हूँ पशु : आप हैं पशुपति !
हे कूडल संगम देव ! कृपया मुझे ऐसा बनाइए
कि न कोई मुझे चोर पशु समझ पकड़कर पीटे
और न कोई आप मालिक को उलाहना ही दे ॥ १९ ॥

(५४)

अटवी में भटके पशु की भांति,
जब तक कूडल संगम देव "जिओ, जिओ" का अभय नहीं देगा
तब तक मैं "अंबा अंबा" कर पुकारता ही रहूँगा,
तब तक मैं "अंबा अंबा" कर चिल्लाता ही रहूँगा ॥२०॥

(५५)

समुंदर के सीप की तरह मैं तरस रहा हूँ।
सोचो तो सही, तुम्हारे बिना और कोई पारखी है ही नहीं।
हे कूडल संगम देव! अतः तुम्हारे बिना मुझे जगह
देनेवाला यहाँ और कोई है ही नहीं ॥ २१ ॥

(५६)

'प्रभो, प्रभो' कर पुकार रहा हूँ,
'प्रभो, प्रभो' कर चिल्ला रहा हूँ,

क्या 'हो' कहकर जवाब नहीं दे सकते ?
हे कूडल संगम देव ! मैं तो सदा तुमको पुकार रहा हूँ।
किंतु क्या तुमने मौन व्रत का धारण तो नहीं किया है ?॥२२॥

(५७)

तुम जन्म देते जगह जन्म न लेना
और तुम मौत देते जगह मौत न लेना,
क्या यह मेरे अपने बस की बात है ?
तुम ठहराते जगह न ठहरना, क्या यह अपने बस की बात है!
हे कूडल संगम देव ! हाय हाय ! कृपया कहो न
कि "यह अपना है", "यह मेरा अपना है" ॥ २३ ॥

(५८)

हे कूडल संगम देव !
बीहड़ जंगल में मुझे एक क्षुल्लक कीर बनाकर
"शिव शिव" का पाठ पढ़ाइये ;
और भक्तिरूपी पिंजड़े में रख मेरा पालन कीजिए ॥२४॥

(५९)

हे पिता मुझे पंगु बनाओ ताकि मैं इधर उधर भटक न सकूँ
हे पिता मुझे अंधा बनाओ ताकि मैं मुड़मुड़कर देख न सकूँ।
हे पिता मुझे बहरा बनाओ ताकि मैं कोई और सुन न सकूँ।
हे कूडल संगम देव ! ऐसा रखो कि आपही के शरण के
चरण छोड़ अन्य विषय की ओर बह न सकूँ ॥ २५ ॥

(३४)

हाय हाय! शिव, तेरे पास तनिक भी करुणा नहीं है।
हाय हाय! शिव, तेरे पास तनिक भी कृपा नहीं है।
तब क्यों कर पैदा किया मुझ इहलोक दुःखी को, परलोक दूर को?
आखिर क्यों कर पैदा किया?
हे कूडल संगम देव! सुनो, क्या मेरे बदले में कोई पेड़ पौधा था नहीं? ॥ २६ ॥

(६९)

आशापाश से भव बंधित रहा हूँ;
अतः इस समय मुझे आपके ध्यान करने फुरसत है नहीं!
करुणाकर, अभयाकर, वरदानी कृपा करो।
हे भक्तजनमनोवल्लभ कूडल संगम देव! तुम्हारे चरण-कमलों में मुझे भौंरा बनाकर रख लो ॥ २७ ॥

(१३०)

आप सांप के मुह में पड़ा मेंढक अपनी भूख मिटाने के लिए
उड़ती मक्खी को देख अपने मुँह में पानी जमाने के मानिंद—
आप सूली पर चढ़नेवाला चोर घी-दूध पीकर और कितने दिन जी सकेगा?

इस दग्ध पेट का भरोसा कर, सरासर झूठ बोलनेवालों को
हमारा कूडल संगम देव पसंद यहीं करता है ॥२८॥

(३४)

पालकी पर आरूढ़ कुत्ते की भांति—
दिखाई देने पर वह अपना पिछला स्वभाव छोड़ता नहीं है।
हे मूड! जला दो! जला दो! इस मन को जो मुझे आप का
सुमिरन करने न दे कर आप बहता है सदा विषय की ओर।
हे मेरे देवता कूडल संगम देव! आँचल फैलाकर माँगता हूँ
मुझे आपके चरण-स्मरण की कृपा कीजिए, आपकी दुहाई है
॥ २९ ॥

(३५)

घृत-स्वाद के लिये तलवार-धार चाटनेवाले कुत्ते की भांति
है अपना जीवन!
देखो तो सही, संसार-संग को छोड़ता नहीं है, अपना मन!
हे कूडल संगम देव! इस कुतियापन को दूर करो,
तुम्हारी दुहाई है ॥ ३० ॥

(३६)

एक खरगोश के पीछे नौ शुनकों को लगाने की भांति,
मुझे लगा दो, अपने को लगा दो कहता है कायविकार,
मुझे लगा दो, अपने को लगा दो कहता है मनोविकार।

हे कूडल संगम देव ! यह तो बताओ करणेंद्रियरूपी शुनक
के स्पर्श के पहले क्या मेरा यह मन तुम्हारे यहाँ आ
सकेगा ? ॥ ३१ ॥

(४३)

विकल हुआ पंचेंद्रिय-धातु से,
मति खो बैठा मनोविकार से,
धृति खो बैठा कायविकार से,
हे कूडल संगम देव ! अतः मैं तुम्हारी शरण में आ पड़ा हूँ
॥ ३२ ॥

(५१)

विषयरूपी घास लाकर पशु के सामने पसार दिया जाय तो
बेचारा पशु उसे घास ही समझ उसकी ओर बढ़ेगा ।
हे कूडल संगम देव ! मुझे विषय रहित बनाकर,
भक्ति रस चखाकर, सुबुद्धिरूपी उदक से अभिसिक्त कर
संभालकर मेरी रक्षा करो ॥ ३३ ॥

(३०९)

गाँव की साड़ी के लिए व्यग्र होनेवाले धोबी के समान
जर अपना, जन अपनी, जमीन अपनी बताकर भ्रांत हुआ ।
हे कूडल संगम देव ! तुम्हें न पहचानने के कारण नाहक मैं
बरबाद हुआ ॥ ३४ ॥

श्री और संपदा स्थिर नहीं हैं

(१३२)

सांप से काट खाएहुओं से बोलवा सकते हैं;
पिशाच लगेहुओं से बोलवा सकते हैं;
किंतु धन-पिशाच लगेहुओं से नहीं बोलवा सकते हैं, भाई!
हे कूडल संगम देव! दरिद्रतारूपी मंत्रवादी के
वहाँ पहुँचने से वे बोलने लगते हैं फौरन! ॥ ३५ ॥

(१५८)

व्याध खरगोश लावे तो उचित मूल्य देकर उसे खरीदते हैं
उसे खरगोश के बदले में भूमिपति का शव बताने पर
एक फूटी कौड़ी तक को दे कर उसे कोई खरीदेगा नहीं।
खरगोश से भी गयागुजरा है मानव जीवन, जानो भाई!
इसलिए गाढ़ा विश्वास रखो हमारे कूडल संगम देव पर
॥ ३६ ॥

(१६२)

पानी के बुल बुले को लोहे की मेखला लगाकर उसे
सुरक्षित रखने का उत्साह देखो!
इस काया पर भरोसा न करके महादानी कूडल संगम देव
को पूजकर जिओ ॥ ३७ ॥

(१६३)

पिंजड़ा मजबूत जान, बे धड़क पढ़नेवाले हे तोता!
फूले न समाकर तुमने कहा कि मैं कभी नहीं मरूँगा!
परंतु तुम्हारे मन में—
जब माया-मार्जाल तुम्हें मार डालने लगेगा,
तब क्या कूडल संगम देव के शिवा और कोई तुम्हारे
पिंजड़े की रक्षा करेगा? ॥ ३८ ॥

(१६४)

संसार एक हवा में रखा दिया है,
संपत्ति एक हाट के लोग है!
संपत्ति पर भरोसा रखकर, बरबाद मत बन।
भूले बिना पूजा कर, हमारे कूडल संगम देव की ॥ ३९ ॥

(१६५)

अरे अरे मानव! क्षणभंगुर आशा कर मत
अंधेरा, चंद्रिका व संपत्ति स्थिर नहीं हैं!
स्थिर पद पाओगे जों तुम कूडल संगम देव की पूजा करोगे
॥ ४० ॥

(३१३)

कांचन नामक शुनक पर पतिया कर मैं तुम को भूल गया,
प्रभु

कांचन के लिए समय छोड़कर तुम्हारे लिए समय है नहीं
हे कूडल संगम देव! बदबू को पसंद करनेवाला शुनक
सुधा का स्वाद क्या जाने! ॥ ४१

अपने मन को प्रसन्न रखो

(३२)

अपना मन डाल पर बैठे मर्कट के मनिंद उछलता कूदता है
जहाँ ठहरता हूँ वहाँ वह ठहरने नहीं देता है,
जिस से मैं जा लगता हूँ उसी से वह मुझे लगने नहीं देता है
हे कूडल संगम देव! तुम्हारी दुहाई है,
मुझे भौंरा बनाकर अपने चरण-कमल में रख लो ॥ ४२ ॥

(३८)

अपना विचार करना चाहता नहीं यह मन,
औरों का विचार करने जाता है यह मन।
कूडल संग के शरणों पर विश्वास न करनेवाले,
भरोसा न रखनेवाले इस दग्ध मन को
क्या करूँ? और कैसे सुधारूँ? ॥ ४३ ॥

(३९)

अपनी इच्छा की कोई बात चलावे तो उसे पसंद करता
यह म

औरों की इच्छा की कोई बात चलावे तो उसे पसंद नहीं
करता है यह मन।
कूडल संगम देव के शरणों को पसंद न करनेवाले इस
मन को ज्वाला में झोंक दूँगा ॥ ४४ ॥

(९९)

जब कि पत्थर गीला पड़ मुलायम नहीं बन सकता है
तब कितने ही समय तक वह पानी में रहने से क्या फायदा ?
जब कि मन में ही दृढ़ता है नहीं
तब कितने ही समय तक वह आपको पूजने से क्या फायदा ?
हे कूडल संगम देव ! गाड़े-धन की रखवाली करनेवाले
भूत की गति हुई अपनी ! ॥ ४५ ॥

(१२४)

दुनिया की टेढ़ को आप क्यों कर ठीक करने जाते हैं ?
अपने अपने तन को आप संभाल लीजिए।
अपने अपने मन को आप संभाल लीजिए।
पड़ोसी के दुःख के लिए आप रोनेवालों को
पसंद नहीं करता है हमारा कूडल संगम देव ॥ ४६ ॥

(२५९)

भोजन घटता नहीं, चिंता छूटती नहीं,
आशा हटती नहीं, व्यवहार बैठता नहीं,

अभिषेक के लिए अभिषेक करता हूँ, कायविकारी हूँ मैं,
अभिषेक के लिए अभिषेक करता हूँ, जीवविकारी हूँ मैं,
अभिषेक के लिए अभिषेक करता हूँ, न मैं शरण हूँ,
और न मैं लिंगैक्य हूँ!
मैं हूँ कूडल संगम देव के यहाँ एक अंतर पिशाच ॥४७॥

(४७८)

मैं आप का ध्यान करता हूँ : आप मुझे पहचानते नहीं हैं
मैं आप से प्यार करता हूँ : आप मुझे देखते नहीं हैं ;
तब मैं जिऊँगा कैसे व जिंदा रहूँगा कैसे ?
हे कूडल संगम देव! यह जान लो
कि मेरे लिए आप ही प्राण, गति व मति हैं ॥ ४८ ॥

अपने हृदय को शुद्ध रखो

(४९)

आमिष की आशा, तामस, असत्य, विषय,
कुटिलता, क्रोध, क्षुद्रता, मिथ्या—
इन सब को मेरी जिह्वा से उखाड़ बाहर फेंक दो।
क्यों कि ये मुझे तुम्हारी ओर कदम बढ़ाने नहीं देते हैं।
हे कूडल संगम देव! अतः इन सब को दूर कर
मुझे पंच जंगमों का भक्त बना दो॥ ४९ ॥

(९६)

भीतर कुटिल : बाहर विनय दिखाकर अपने को भक्त
कहानेवालों की
नस नस को लिंग पहचानने के कारण उन्हें पसंद नहीं
करता है !
वे लोग सतपथ की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं।
भीतर एक बाहर एक हुआ तो जगदीश कूडल संगम देव
उन्हें एक दग्ध आशा दिखाकर जड़ से उखाड़ दूर दूर तक
फेंक देगा ॥ ५० ॥

(११०)

उसके वचनों में है गुड़ : उसके हृदय में है विष !
आँखों से एक को बुलाती है : मन में एक से रमती है !
हे कूडल संगम देव ! सुनो, पुरुषों को चकमा देने वाली इस
धोखेबाज पर विश्वास मत रखो ॥ ५१ ॥

(११६)

न विश्वास करते हैं, न भरोसा रखते हैं, यों ही बुलाते हैं ;
इस लोक के मनुज विश्वास करना जानते नहीं हैं।
विश्वास कर [नंबी भक्त जैसा] बुलाने पर
"हो" का जवाब शिव क्या नहीं दे सकता है ?

विश्वास किए बिना भरोसा रखे बिना यों ही बुलानेवालों
की स्थिति
सिंगी को पैर से दाब कर व्यर्थ पुकारनेवाले की हुई न!
॥ ५२ ॥

(११७)

बांबी को पीटने से क्या साँप मर सकता है?
घोर तप करने से क्या लाभ?
अंतरंग आत्म शुद्धि विहीन लोगों पर
हमारा कूडल संगम देव विश्वास करेगा कैसे? ॥ ५३ ॥

(११८)

उसे काम क्योंकर जो अपने को लिंगप्रेमी कहाना
चाहता है!
उसे क्रोध क्योंकर जो अपने को शरणवेद्य कहाना चाहता है?
उसे लोभ क्योंकर जों भक्तिलाभ की अपेक्षा
करता है?
उसे मोह क्योंकर जो अपने को प्रसादवेद्य कहाना
चाहता है!
मद मत्सरवाले की हृदय शुद्धि कैसे?
तृप्त जीवन बितानेवालों में समाया रहता है हमारा कूडल
संगम देव! ॥ ५४ ॥

(१२६)

प्रेम विहीन पूजा ! नेह विहीन कर्म !
वह पूजा, वह कर्म
चित्र का रूप जानो भाई ! चित्र का ईख जानो भाई !
गले लगाने से सुख नहीं ! चखने से स्वाद नहीं !
हे कूडल संगम देव ! इसी को कहते हैं खोखली भक्ति !
॥ ५५ ॥

(१३१)

क्रूर कुभाषा व कुहक के छूटने तक
आरत व क्रोध नहीं छूटने के हैं।
तू कहाँ, शिव कहाँ ? जा रे पगला !
भवरोगरूपी अंधकार के दूर हो जाने तक
कहाँ कूडल संगम देव और कहाँ तू ? रे पगला ! ॥ ५६ ॥

(२३३)

कर कर के बरबाद हुए बिना मन के ;
दे दे कर बरबाद हुए बिना आत्म शुद्धि के !
करने की, देने की आत्म शुद्धि हो तो
उन्हें संप्राप्त हो जायँगे हमारे कूडल संगम देव ॥ ५७ ॥

(२३५)

चोरी करो मत, हिंसा करो मत, झूठ बोलो मत ;

कुपित होओ मत, औरों के प्रति घृणा करो मत ;
अपनी स्तुति करो मत, औरों की निंदा करो मत ;
अंतरंग शुद्धि यही है, बहिरंग शुद्धि भी यही है ;
यही हमारे कूडल संगम देव को रिझाने की रीत है !
॥ ५८ ॥

(२६०)

दीवार को कितनी ही बार क्यों न धोवे
पर उस से क्या दीवार की मट्टी धुल जायगी ?
अपने शरीर में स्थित अवगुणों को मेटकर कृपा करो, प्रभु !
क्या यह जानते नहीं हो कि अपना मन
कंबल में आटा सानने के समान है !
हे कूडल संगम देव ! तुम्हें प्रणाम करने से मैं शुद्ध बनता हूं,
प्रभु ! ॥ ५९ ॥

(२८१)

लोकोपचार के लिए व अभिषेक के लिए अभिषेक करता हूँ ;
मन का तामस छूटता नहीं है, मन का कपट हटता नहीं है
'शिव प्रणाम' को अपने लब पै लेना एक बार भी मुझ से
नहीं बना न !
जब तक अपने मन में यह दुविधा है तब तक कूडल संगम
देव मुझ पर कैसे प्रसन्न होंगे ? ॥ ६० ॥

(२८३)

मैं केवल बाह्य के लिये शुद्ध बना हूँ, भीतरी मन से मैं कब
शुद्ध बना था ?
अपने हाथ से स्पर्श करके पूजा करने जाऊँ तो हाथ ही
शुद्ध नहीं है
परंतु भाव शुद्धि के पाने पर क्या हमारा कूडल संगम देव
"इधर आ" कह कर मुझे अपने यहाँ बुला नहीं लेगा ?
॥ ६१ ॥

(४७५)

बाहर लेप कर क्या कर सकूँगा जब तक भीतर शुद्ध नहीं है ?
बाहर रुद्राक्षी बांधकर क्या कर सकूँगा जब तक मन उन्हें
स्पर्श नहीं करता है ?
सैंकड़ो पढ़ कर क्या कर सकूँगा, जब तक हमारे कूडल
संगम देव को मन से ध्यान नहीं करता हूँ ॥ ६२ ॥

(७६४)

आशा, रोष, हर्ष आदि करणेंद्रियों का स्पर्श होने न देकर
आचार करूँगा, मैं शिवाचार करूँगा ;
अपने मन में वंचना रहित भय-भक्ति से पेश आऊँगा ;
और अपनी प्राणशक्ति लगाकर भाव शुद्ध पूजा करूँगा
हमारे कूडल संगम देव की ॥ ६३ ॥

अहंकार के शिकार मत बनो

(२४८)

तुम पर क्रोध करने वाले के प्रति खुद क्योंकर क्रोधी बनते हो?
इस में अपना क्या बिगड़ता है? उसका क्या बनता है?
शारीरिक क्रोध अपने ही बडप्पन का नाश है!
मानसिक क्रोध अपने ही आत्म-ज्ञान का नाश है!
हे कूडल संगम देव! अपने घर की आग
अपना घर जलाना छोड़ कर औरों का घर नहीं जलाती है!
॥ ६४ ॥

(२५३)

जब सब कोई मेरे चरणों पर नमस्कार करने लगे
तब मुझ में आचार्यत्व के बढ़ जाने से मैं मद मत्त हो गया हूँ।
तब से मैं तनकर रहता हूँ और मुझ में घमंड बढ़ गया है
प्रभु!
हे कूडल संगम देव प्रभु! उस घमंड को आग से दग्धकर
शुद्ध करके सफेद बुकुनी के समान बनाओ ॥ ६५ ॥

(३८६)

अपने ही लोगों ने प्यार पुचकार व प्रशंशा करके मुझे सुवर्ण
सूली पर चढ़ा दिया है!
आप लोगों की प्रशंशा ने मुझे दोहरा बनादिया था न!

हे प्रभु ! तुम्हारे सम्मान ने मुझे तेज धार के समान लगी थी न !
हाय हाय ! तंग आगया हूँ, सहन करना कठिन है।
हे धर्मी कूडल संगम देव ! यदि तुम मेरे हितू हो तो कृपया
मेरी प्रशंशा को रोको ॥ ६६ ॥

(४७२)

मुझे जनम जनम लेने न देकर, सोऽहं न कहाकर
मुझ से दासोऽहं कहाओ, प्रभु।
हे कूडल संगम देव ! मुझे लिंग जंगम का प्रसाद बताकर
अपनी रक्षा करो प्रभु ॥ ६७ ॥

(६३९)

हाथी पर आरूढ़ हो कर गए तुम,
घोड़े पर आसीन हो कर गए तुम,
हे भाई कुंकुम कस्तूरी लेप कर गए न तुम !
किंतु सत्य की भित्ति को नहीं पहचान सके न !
सद्गुणरूपी फल को, बोकर, नहीं पा सके न !
अहंकाररूपी मदमत्त मदकरी पर चढ़कर विधि का वेध्य
बने न तुम !
हमारे कूडल संगम देव को न पहचानने के कारण नरक-
भाजन बने न तुम ! ॥ ६८ ॥

(८०१)

जब अहंकार मन में घर कर लेता है
तब लिंग के लिए गुंजाइश है कहाँ ?
अतः अहंकार के लिए गुंजाइश न दे कर लिंग-शरीरी बनकर
रहना चाहिए।
अहंकार रहित बनो तो कूडल संगम देव को अपने
समीप जानो ॥ ६९ ॥

(८३३)

हे प्रभो ! मुझे जनम जनम लेने न दे कर, सोहं न कहाकर
मुझ से दासोहं कहाओ।
हे कूडल संगम देव ! मुझे लिंग जंगम के प्रसाद की भित्ति
दिखाकर अपनी रक्षा करो, तुम्हारी दुहाई है ॥ ७० ॥

विनयी बनो

(२४४)

भक्त जो भी दिखाई पड़े उसे नमस्कार करनेवाला ही भक्त है
मृदु वचन ही समस्त जप है
मृदु वचन ही समस्त तप है
सद्विनय ही सदाशिव को रिझाने का तरीका है
ऐसों के बिना अन्यों को पसंद नहीं करता है हमारा
कूडल संगम देव ॥ ७१ ॥

(३३४)

मुझ से कोई छोटा है नहीं ; शिव भक्तों से कोई बड़ा है नहीं

आपके चरण साक्षी रहें, मेरा मन साक्षी रहे।

हे कूडल संगम देव! मेरे लिए यही दिव्य रहे ॥ ७२ ॥

(३४१)

न अर्चना करना जानता हूँ, न पूजा करना जानता हूँ,

दिनंप्रति शिवरात्री मनाना नहीं जानता हूँ।

फटे पुराने गेरुए कपड़े पहने हुए भजन करना जानता हूँ मैं केवल फटे पुराने गेरुए कपड़े पहने हुए !

हे ईश! तुम्हारे दास की दासी का दास हूँ मैं,

तुम्हारे घर का वेषधारी पंगुल हूँ मैं ;

हे कूडल संगम देव ! तुम्हारा लांछन धारण किया उदर पोषक हूँ मैं!॥ ७३ ॥

कथनी जैसी करनी रहे

(१९१)

जब तक तुम हमारे शरणों के उद्देश के सामने लाख बन द्रवीभूत नहीं हो जाते हो ?

और जब तक तुम स्थावर व जंगम को भिन्न भिन्न समझना छोड़ उनपर विश्वास नहीं कर लेते हो ?

तब तक द्वैताद्वैत पढ़कर क्या करोगे भाई ?
हे कूडल संगम देव ! खाली बातों की लड़ी में क्या सार
रहेगा ? ॥ ७४ ॥

(२०२)

तन मन व धन को आड़ में रख बातें बनानेवालो
और खोखली बातें करनेवालो तुम सब सुनो—
पुच्छरिक्त बाण क्या कभी अपने लक्ष्य को वेध सकता है ?
मायापाश मेटकर मन की उलझन सुलझने के पहले
क्या कूडल संगम देव प्रसन्न हो सकता है ? ॥ ७५ ॥

(८०२)

मुँह खुले तो मोतियों की लड़ी-सी होनी चाहिए।
मुँह खुले तो माणिक्य की दीप्ति-सी होनी चाहिए।
मुँह खुले तो स्फटिक की सलाक-सी होनी चाहिए।
मुँह खुले तो लिंग प्रसन्नता से "यही सही है" कहना
चाहिए।
मुँह की मर्यादा में नहीं चले तो, कूडल संगम देव प्राप्त
होगा कैसे ? ॥ ७६ ॥

सत्य ही स्वर्ग है

(१३९)

देवलोक मर्त्यलोक क्या और हैं ?
क्या और इस लोक के अंतर्गत फिर अनंत लोक हैं ?

हे भाई! शिवाचार ही शिवलोक है;
भक्त का ठौर ही देवलोक है;
भक्त का आंगन ही वारणासि है,
हे कूडल संगम देव! काया ही कैलास है, यह सत्य है,
जानो ॥ ७७ ॥

(१५५)

हे कूडल संगम देव!
सृष्टिकर्ता का टकसाला है मर्त्यलोक,
यहाँ चलनेवाले सिक्के वहाँ भी चलते हैं,
यहाँ न चलनेवाले सिक्के वहाँ भी नहीं चलते हैं ॥ ७८ ॥

(२३९)

देवलोक मर्त्यलोक और नहीं हैं, जान लो भाई
सत्य बोलना ही देवलोक है और है असत्य बोलना ही
मर्त्यलोक!
आचार ही स्वर्ग है, और है अनाचार ही नरक—
हे कूडल संगम देव! तुम ही इसके साक्षी हो ॥ ७९ ॥

(६३१)

महामारी मसानी और नहीं हैं, यह जान लो भाई!
मारी आखिर है क्या? निषिद्ध वस्तु देखोगे तो वह है मारी
वचन तोड़ कर बोलोगे तो वह है मसानी

और हमारे कूडल संगम देव के स्मरण को भुला दोगे तो
वही है महामारी! ॥८०॥

(६७७)

जंबूद्वीप नवखंड पृथ्वी में, सुनिये दोहरी ज़बान को—
मारडाल ने की घोषणा करनेवाली भाषा है भगवान की;
जीत जाने की घोषणा करनेवाली भाषा है भक्त की!
हे कूडल संगम देव! सद्भक्त सत्यरूपी खर खड्ग धार पर
चलकर जीत गए न! ॥८१॥

प्राणि हिंसा मत करो

(२४७)

दयारहित धर्म कौन है भाई?
दया ही अपेक्षित है समस्त प्राणि जगत में,
दया ही धर्म की जड़ है भाई;
ऐसों के बिना अन्यों को पसंद कूडल संगय्या करता नहीं है
॥८२॥

(५६१)

सूप के तले रख पूजा की जानेवाले छोटे छोटे देवों को
भेड़ चढ़ाकर खुशियाँ मनाते हैं!
क्या उनकी रक्षा जिनसे भगवान रूठगया है भेड़ कर
सकेगी मर कर?

न भेड़ चाहिए न मेमना चाहिए,
केवल बिल्वपत्र लाकर भूले बिना कर पूजा कूडल संगम
देव की ॥ ८३ ॥

(५७४)

हे बकरा! बात की बात में अपने को मारडाला है करके
तू रो, समझा!
वेदाध्यायियों के सामने रो, समझा!
शास्त्रज्ञों के सामने रो, समझा!
तेरे रुदन का उचित दंड हमारा कूडल संगम देव उनको
देगा ॥ ८४ ॥

परवधु को महादेवी समझो

(४४५)

जहाँ कहीं मैं दृष्टिपात करता हूँ वहीं अपना मन रमने
लगे तो,
सौंगंद है, तुम्हारी सौंगंद और तुम्हारे प्रमथों की सौंगंद!
हे कूडल संगम देव! परवधु को मैं महादेवी मानता हूँ!
॥ ८५ ॥

(४४६)

चलते सांप से डरता नहीं, धधकती ज्वाला से डरता नहीं,
और कठार की नोक से भी डरता नहीं हूँ!

किंतु एक से मैं डर खाता हूँ, एक से मैं सहम जाता हूँ
पर स्त्री पर धन नामक भयानक पिंजड़े से मैं डर जाता हूँ!
बहुत पहले से अनडर रावण इसका ज्वलंत निदर्शन बना है!
हे कूडल संगम देव! अतः इन से मैं डर खाता हूँ॥८६॥

(६४३)

आँख नहीं उठाना चाहिए पर स्त्री पर, मुँह नहीं खोलना
चाहिए पर स्त्री से, हरगिज मुँह नहीं खोलना चाहिए,
भेड़ के पीछे पीछे जाने वाले कुत्ते के समान नहीं बनना
चाहिए
ऐसी एक लालसा के पीछे हजारों वर्षोंतक नरक में गिरा
देता है हमारा कूडल संगम देव॥८७॥

सदाचारी बनो

(६५२)

सदाचार सद्भक्तिविहीनों को वह पसंद करता नहीं है
अतः उनकी आराधना व्यर्थ है।
हमारा कूडल संगम देव न दिनंप्रति प्रायश्चित्त करनेवालों को
पसंद करता है और न भू भारकों को!॥८८॥

(६५३)

सौ पढ़े तो क्या, सौ सुने तो क्या?
न राग मिटता है, न रोष मेटता है,

सिर्फ अभिषेक करने से क्या फायदा ?
कथनी और करनी में अजगजांतर रखनेवाले
डोम को देख कहकहा मारता है हमारा कूडल संगम देव
॥ ८९ ॥

(६७३)

कूडल संग का शरण
क्या उठाने के बाद उसे छोड़ेगा; और क्या छोड़ने के
बाद उसे उठायेगा ?
क्या व्रती हो जाने के बाद उस से मुँह मोड़ेगा; और क्या
वचन देने के बाद उसे तोड़ेगा ?
अगर वह सहज सज्जनता को भूल जावे तो
कूडल संगय्या उसकी नाक काट देता है, दाँतों के दिखाई
देने तक ! ॥ ९० ॥

(७३५)

हत्या नहीं करूँगा प्राणियों की,
भोजन नहीं करूँगा जिह्वा चापल्य का,
संग नहीं करूँगा परसतियों का
क्यों कि जानता हूँ इनके आगे उलझन है !
हे कूडल संगम देव ! माप के अकेले मुँह के समान मुझे
एक ही मन देकर, ठोंककर स्थिर बनाओ, ॥ ९१ ॥

सज्जन संग में रहो

(११९)

समीप जा! सज्जनों का संग करना चाहिए
दूर जा! दुर्जनों का संग नहीं करना चाहिए।
कोई भी सांप क्यों न हो? विष तो विष ही है!
ऐसों का संग नहीं करना चाहिए।
हे कूडल संगम देव! अंतरंग शुद्ध विहीनों का संग
घोर विष तथा कालकूट-सा होता है ॥ ९२ ॥

(१३४)

समीप जाओ! सज्जनों का संग कल्याणदायक होता है
दूर जाओ! दुर्जनों का संग विनाशात्मक होता है।
संग दो तरह के होते हैं : एक को गहो, एक को तजो।
मंगल मूरत हमारे कूडल संग के शरणों के संग को गहो
॥ ९३

(३५८)

काम को तिरस्कारनेवाला, हेम को धिक्कारनेवाला,
सूर्योदय से परे रहनेवाला होता है शरण!
हे महादानी कूडल संगम देव! भूले बिना हर हमेशा तुम्हा
स्मरण करनेवालें के घर में मुझे एक कुत्ता बनाकर रखो
॥ ९४

(३६०)

न ब्रह्मपद चाहिए न विष्णुपद चाहिए
न रुद्रपद चाहिए न और कोई पद ही मुझे चाहिए !
हे कूडल संगम देव ! मुझे उस महापद की कृपा करो
जिस से मैं सद्भक्तों के चरण पहचान कर उन से लिपट मनाऊँ !
॥ ९५ ॥

(३६५)

हे कूडल संगम देव !
भूला-भटका-शिशु अपनी माता को चाहने के समान ;
भूला-भटका-पशु अपने झुंड को ढूंढने के समान ;
चाहता था तुम्हारे शरणों के आगमन को ;
चाहता था तुम्हारे भक्तों के आगमन को ;
विकसित होनेवाले कमल को दिनकर का आगमन
जैसा सुहावना होता है
मेरे लिए तुम्हारा आगमन ठीक वैसा ही होता है ॥ ९६ ॥

(३६७)

पानी से विछुड़े मत्स्य का जीवित रहना ही काफी अचरज़
की बात है।
हे लिंग ! मुझे तो शिव शरणों के समूह में रखो,
शिव शिव ! हे कूडल संगम देव !! अपना आँचल

फैला कर माँगता हूँ कि मुझे शिव शरणों के समूह में रखो ॥ ९७ ॥

(८८२)

पेड़ों के आपसी रगड़ से उत्पन्न अग्नि
उन पेड़ों को जलाये बिना छोड़ती है क्या ?
महानुभावों के संग से कढ़ी ज्ञानाग्नि
उन के गुण दैहिक गण को जलाये बिना रहती है क्या ?
हे कूडल संगम देव ! अतः ऐसे महानुभावों का परिचय मुझे कराओ ॥ ९८ ॥

सद्भक्त ही बड़ा है

(६०७)

चतुर्वेदी हुआ तो क्या ? जब उसके पास लिंग नहीं है तो समझो वही चांडाल है।
श्वपच हुआ तो क्या ? जब लिंग उसके पास है तो समझो वही वारणासि है,
और उसकी वाणी कल्याणदायक व जग पावन करनेवाली होती है।
उसका प्रसाद तो मेरे लिए सुधा सेवन है !
श्लो:—"न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचोपि वा।
तस्मादेव ततो ग्राह्यम् । स च पूज्योयथाह्यहम् ॥"

इस कारण कूडल संगम देव को समझ कर जो पूजा करता है
वह षट्दर्शन से भी श्रेष्ठ है व जग पावन है, जान लो
भाई ॥ ९९ ॥

(६१३)

वेदशास्त्रियों को मैं बड़ा नहीं कहता हूँ,
और माया भ्रांति से घिरे गीतज्ञों को मैं बड़ा नहीं कहता हूँ।
कैसे ये बड़े हैं ? एक तो याग यजन करनेवाले हैं तो दूसरे
नृत्य गायन करनेवाले हैं !
इन से भी ज्यादा साधनेवाले क्या इन से छोटे हैं ?
इसीलिए विद्या, गुण, ज्ञान, धर्म, आचार व शीलों की
वही साधना करो जो हमारे कूडल संग के शरणों ने की है
॥ १००॥

(६५८)

श्वपच हुआ तो क्या हुआ ? लिंग भक्त ही कुलीन है।
यदि विश्वास रखते हुए भी विश्वास न करे तो उसी को
संदेही समझ लेना चाहिए।
जब तक उसकी भक्ति मन से नहीं है, तब तक गले में
(रुद्राक्षी) बाँधने से, (लिंग) धारण करने से व (विभूति)
लेपने से क्या फायदा ? ॥ १०१ ॥

(७१४)

कूडलसंगम देव जिन पर प्रसन्न होता है उनकी भक्ति छोड़
क्या कभी भावाभिभूति विहीनों की भक्ति स्थिर होती है?
स्वामी रहित घर में प्रविष्ट करनेवाले चोर कुत्ते के समान
तुम्हारे अनुपस्थित घर में मैं प्रवेश नहीं करूँगा, प्रभु।
हे कूडल संगम देव! वह श्वपच ही क्यों न हो
तुम्हारे उनके यहाँ उपस्थित रहने से वही कुलीन है ॥१०२॥

कष्टों से डरो मत

(४४४)

सब कोई वीर हैं, सब कोई धीर हैं;
सब कोई महान हैं, सब कोई प्रमथ हैं;
किंतु इन को लड़ते हुए कोई शायद ही देख सकता है;
परंतु इन को भागते हुए सब कोई देख सकते हैं!
अतः कूडल संग के शरण ही धीर हैं
और बाकी सब अधीर हैं ॥ १०३ ॥

(४५६)

हे कूडल संगम देव! ऐसा करो कि मेरे घर पर फूटा
तवा तक न रहे;
और मेरे हाथ में दे दो दूब।
तब अगर मैं "मृडदेव प्रणाम" कहकर भीख माँगने जाऊँ तो

तब तुम वहाँ उन से "आगे चल देव" कहाओ, प्रभु !
॥ १०४ ॥

(६८९)

हे कूडल संगम देव! किसी का भी
आयु के बीतने तक मरण नहीं ;
जबान के तोड़ने तक दारिद्र्य नहीं ।
तब डरना क्यों कर इस लोक की फटकार से?
खास कर जब मैं तुम्हारा सेवक हो चुका हूँ तब डरना
क्यों कर? ॥ १०५ ॥

(६९१)

चाहे जो बीते मुझ पर, अपनी धृति मैं खो नहीं बैठूँगा ;
चाहे अपने शरीर की हड्डियाँ निकल आवें; नस टूट जावें
और अंतड़ी कढ़ निकले
तब भी मैं अपनी धृति खोने नहीं दूँगा।
अपना सिर कटकर धड़ जमीन पर लोट जाय
तब भी अपनी जीभ "हे कूडल संगा, प्रणाम" कहा
चाहेगी, प्रभु ! ॥ १०६ ॥

(६९४)

सुख प्राप्त हो तो उसे मैं अपने पुण्य का फल नहीं बताऊँगा,
दुःख प्राप्त हो तो उसे मैं अपने पुण्य का फल नहीं बताऊँगा

कर्म का अंतिम आधार कर्ता है यह भी मैं नहीं बताऊँगा,
हे प्रभु! औदसीन्य से भी मैं तुम्हें प्रणाम नहीं करूँगा।
हे कूडल संगम देव! तुमने मुझे जो उपदेश दिया है
वह कुछ इसी तरह का है।
अतः अपनी सांसारिकता के घिस जाने तक मैं इसी उपदेश
का उपयोग करता रहूँगा ॥ १०७॥

(६९५)

मैं अपने तन के तिलमिलाने से डरकर तुम से 'बचाओ'
नहीं कहूँगा।
जीवनोपाय से डर खा कर मैं तुम से याचना नहीं करूँगा।
'यद् भावं तद् भवति': संकट आवे चाहे, संपद् आवे—
'चाहिए; नहीं' नहीं कहूँगा;
हे कूडल संगम देव! न तुम्हारा मुँह ताकूँगा और न
मनुजों से माँगूँगा; सौगंद है तुम्हारी सौगंद है
॥ १०८॥

(६९६)

हम पर कल गुजरनेवाला आज ही गुजर जावे;
और आज गुजरनेवाला अभी गुजरे।
इस से कौन डरता है? इस से कौन भय खाता है?
"जातस्य मरणं ध्रुवं" के अनुसार

हमारे कूडल संगम देव के लिखे लिखा को बदलने
हरि ब्रह्मादियों को भी साध्य नहीं है ॥ १०९ ॥

(६९८)

अन्न का दास मैं नहीं हूँ; परंतु समय का पाबंद हूँ मैं;
दिशाशून्य चंपत हो जानेवाला चपरासी मैं नहीं हूँ;
हे कूडल संगम देव! सुनो, मरण ही मेरे लिए महानवमि
है ॥ ११० ॥

(७०९)

मैं उनको जवाब दूँग और देने का साहस भी करूँगा।
चांडाल के घर घर जा कर खूब कुली ही क्यों न करनी पड़े;
किसी भी हालत में हे प्रभु! तुम्हारी स्थिति के लिए चिंतित
रहूँगा।
ऐसा न करके यदि अपने पेट की ज्वाला के लिए तड़पूँगा तो
हे कूडल संगम देव! सिर दंड हो ॥ १११ ॥

(७२९)

तुम मुझे चाहे जैसे मन में रखो, मैं डरता नहीं हूँ;
क्यों कि वह मन महाघन की शरण में गया है।
तुम मुझे चाहे जैसी संपत्ति में रखो, मैं डरता नहीं हूँ;
क्यों कि वह संपत्ति सति सुत मातापिता को शायद ही जावे
तुम मुझे चाहे जैसे तन में रखो, मैं डरता नहीं हूँ;

क्यों कि वह तन सर्वार्पित हो नियत प्रसाद भोगी बन गया है
हे कूडल संगम देव ! इसलिए मैं वीर धीर समग्राहक होने से
तुम से डरता नहीं हूँ ! ॥ ११२॥

(७३९)

जहाँ कहीं तुम जाते हो वहाँ तुम अपना विकार नहीं
छोड़ते हो।
क्या यह अपनी गरिमा है ?
दास के वस्त्र पहनना क्या यह अपनी एक गरिमा है ?
सिरियाल के पुत्र को भीख में माँगना क्या यह अपनी एक
गरिमा है!
हे कूडल संगम देव ! बंदर को घास में छिपा रखने की
भांति है तुम्हारी यह आदत ! ॥ ११३॥

(७५२)

कोई रूठ कर हमारा क्या कर सकेगा ?
सारा गाँव रूठ कर हमारा क्या बिगाड़ सकेगा ?
हमारे कुतिया को सगाई में कोई भी अपनी बेटी न दे;
और हमारे कुत्ते को कोई भी पत्तल में खाना न परोसे!
जब तक हमारे पास कूडल संगम देव है
तब तक हमारा कोई क्या बिगाड़ सकेगा ?
हाथी पर जानेवाले को क्या कुत्ता काट खा सकेगा ? ॥११४॥

(७५३)

न्याय निष्ठुर हूँ मैं, दाक्षण्य पर मैं नहीं हूँ ;
लोक विरोधी हूँ मैं, किसी से भी मैं डरता नहीं हूँ ;
क्योंकि कूडल संग का शरण राजतेजोयुक्त होता है॥११५॥

(८५४)

धन के संबंध में शुचि, प्राण के संबंध में निर्भय ;
यह किस को साध्य हो सकता है ?
गुप्त धन भूल से ही सही आजावे तो उसे इनकार करने-
वाला कोई है ?
यदि वही धन प्रमाद वश से ही सही आजावे तो उसे
हड़पने के लिए झूठ बोले बिना रहनेवाला कोई है ?
हे कूडल संगम देव ! आशातीत निर्भय तुम्हारे प्यारे
शरण को छोड़ और किसी को भी यह साध्य नहीं है
॥११६॥

संसार मत तजो

(६४०)

इंद्रिय निग्रह करूँ तो उपजेंगे कई दोष ;
सामने आ आ कर बारंबार सताएँगी पंचेंद्रियाँ !
सतिपतिरतिसुख को क्या तजा सिरियाल चंगला ने ?
सतिपतिरतिसुख भोगोपभोगविलास को क्या तजा

सिंधुबल्लाल ने?

हे कूडल संगम देव! तुम्हारे संपर्क में आने के बाद भी
अगर मैं पर धन, पर सतियों की अपेक्षा करूँ तो
मैं हो जाऊँ तुम्हारे शरणों से दूर! ॥ ११७ ॥

सब किसी को अपना बंधु समझो (जाति भेद मत करो)

(३४२)

मेरे पिता डोहर कक्कय्या जी या मेरे पितामह चेन्नय्या जी
हो जाने से क्या मैं जी नहीं सकता?
आखिर मैं उस श्वपचय्या जी के सानिध्य से भक्ति सद्गुणों
को सीख ही लूँगा।
हे कूडल संगम देव! इस मनहूस जाति के जनम में मेरा
जन्म हुआ है न!
क्या यह मेरे लिए उचित है? ॥ ११८ ॥

(३४८)

पिता हमारे अछूत चेन्नय्या जी हैं;
पितामह हमारे डोहर कक्कय्या जी हैं;
प्रपितामह हमारे चिक्कय्या जी हैं;
और किन्नर बोम्मय्या जी हमारे भाई हैं!
हे कूडल संगम देव! तिस पर भी तुम मुझे पहचानते क्यों
नहीं हो? ॥ ११९ ॥

(४१७)

हे भाई! तुम आचार जान लो, विचार जान लो :—
जंगम स्थललिंग है यह जान लो;
जाति भेद है नहीं, सूतक है नहीं;
अजात का कुल होता ही नहीं है यह भी जान लो
कथनी जैसी करनी न रहे तो
हमारे कूडल संगय्या उन्हें पसंद करेगा नहीं यह जानलो
भाई अच्छी तरह से ॥ १२० ॥

(४५२)

लिंगयुक्त भक्त के घर आने पर
अगर मैं पूछूँ कि उसका कायक कौनसा है तो
तुम्हारी सौगंद! तुम्हारे पुरातनों की सौगंद! सिर दंड!
सिर दंड!!
हे कूडल संगम देव! जो मैं तुम्हारे भक्तों के कुल की
छानबीन करूँ तो तुम्हारे रनवास की सौगंद रहे!
॥ १२१ ॥

(५९१)

पिंडनिवासस्थान के आश्रयदाता सूतकयुक्त पुरुष के विना
दूसरा कौन बन सकता है?
जल-बिंदु का व्यवहार एक ही होता है

आशा आमिष, रोष हर्ष, विषय आदि सब का व्यवहार एक
ही होता है।
क्या पढ़ने से क्या सुनने से क्या प्रयोजन ?
अपने को कुलीन बताने के लिए अपने पास कौन सा
प्रमाण है ?
श्लोः---सप्तधातु समं पिंडम् समयोनि समुद्भवम् ।
आत्मजीव समुत्पन्नम् वर्णनाम् किं प्रयोजनम् ॥
लोहा गरमा ने से लुहार बना, कपड़ा धोने से धोबी बिना,
बुनने से जुलाहा बना, वेद पढ़ने से ब्राह्मण बना।
कानों से जन्म लेनेवाला कोई है इस संसार में ?
हे कूडल संगम देव ! इसलिए अंगस्थल को जाननेवाला
ही कुलीन है ॥ १२२ ॥

(५९२)

हत्यारा ही अंत्यज है, गंदगी खानेवाला ही चांडाल है,
जाति किस चिड़िया का नाम है ?
नहीं तो उन हत्यारे और चांडालों की जति है कौन सी ?
सकल जीवात्मा की भलाई चाहनेवाला
हमारे कूडल संगम देव का शरण ही कुलीन है ॥ १२३ ॥

(६२९)

केवल खाने में, पहनने में, क्रिया भ्रष्ट हो गई कहते हैं;

केवल लेने में, देने में, कुल की छानबीन करते हैं।
मैं कैसे उन्हें भक्त कहूँ ? मैं कैसे उन्हें युक्त कहूँ ?
हे कूडल संगम देव ! सुनो तो, यह मलिन मनवाली विमल
जल से नहाने के समान हुआ ! ॥ १२४ ॥

(७१०)

देव ! हे देव ! कछु विनति सुनो मोरी :—
विप्र से लेकर अंत्यज तक चाहे जो हों
यदि वे शिवभक्त बने हैं तो अन सब को मैं समान मानना हूँ
ब्राह्मण से लेकर श्वपच तक चाहे जो हों
यदि वे भवि बने हैं तो उन सब को मैं समान मानता हूँ ;
और इसी तरह मानने को अपना मन मजबूर करता है।
मेरे इस कथन में किसी को तिल की नोक भर भी संदेह हो
तो हमारा कूडल संगम देव उनकी दांतों के दिखाई देने
तक नाक काटेगा ॥ १२५ ॥

(७१६)

वेदों को परख सकता हूँ मैं शास्त्रों को बेड़ी लगा सकता हूँ,
तर्क का चमड़ा उधेड़ सकता हूँ मैं।
आगम की नाक काट सकता हूँ मैं।
हे महादानी कूडल संगम देव ! मैं हूँ अछूत चेन्नय्या जी
का घरेलू आदमी ॥ १२६ ॥

(७१७)

कुल चाहे जो हो हमारा क्या ? शिवलिंग युक्त ही कुलीन है
शरणों में जाति-सांकर्य हो जाने के बाद कौन उन के कुल
का छिद्रान्वेषण करे ?

श्लो :—शिवेजात कुले धर्मे पूर्वजन्म विवर्जितः ।
उमा माता पिता रुद्रो ईश्वरः कुलमेव च ॥

हे कूडल संगम देव ! इस के अनुसार उन के यहाँ प्रसाद
ग्रहण करूँगा, सगाई संबंध करूँगा और उन शरणों पर
विश्वास भी रखूँगा ॥ १२७ ॥

(७४९)

हमारे कूडल संगम जी अछूत चेन्नय्या जी के घर में भोजन
करने से—
वेद थर थर काँपने लगा था, शास्त्र बगले झाँकने लगा था ;
तर्क तरकना छोड़ गूँगा बनने लगा था ;
और आगम कन्नी काटने लगा था, भाई ! ॥ १२८ ॥

(८२९)

गाय को चोर हर ले गए ऐसा मत कहो जी, तुम्हारी
दुहाई है।
रो धो कर चिल्लाओ मत, तुम्हारी दुहाई है।
हर किसी से यह कहते फिरते मत रहो, तुम्हारी दुहाई है।

क्यों कि कूडल संगम देव एकोभाव होने के कारण
वहाँ खानेवाला भी संग और यहाँ खानेवाला भी संग है!
॥ १२९ ॥

संदेह व सूतक तजो

(७७१)

बांबी के ऊपर पड़ी रज्जु भर के छूने से मरते हैं शक्की लोग!
सर्पदंश से भी मरते नहीं हैं बेशक्की लोग!
हे कूडल संगम देव! शक्की को प्रसाद भी घोर कालकूट
विष जैसा लगता है॥ १३० ॥

(७८०)

कानों का सूतक मिटा सद्गुरु वचन से;
आँखों का सूतक मिटा सद्भक्त दर्शन से;
शरीर का सूतक मिटा तुम्हारे चरण स्पर्शन से;
मुँह का सूतक मिटा तुम्हारे प्रसाद सेवन से;
इस तरह के नाना सूतक मिट गए तुम्हारे शरणों के
अनुभावि बनने से।
हे कूडल संगम देव! यह जानने के कारण कि तुम्हारे शिवा
कुछ भी नहीं है मेरे मन का सूतक मिटगया॥ १३१ ॥

(९४०)

कूडल संग का शरण
मर कर जन्मनेवाला नहीं, शक्की व सूतकी नहीं,

आकार युक्त नहीं, निराकार रिक्त नहीं है।
वह काया वंचक नहीं, जीव वंचक नहीं निरंतर सहज है।
वह शंकातीत महामहिम व उपमातीत है॥ १३२॥

कर्म मत करो

(५८२)

तुम जादू पढ़नेवालों की भांति अपनी आँखें बंद कर लेते हो,
क्या तुम्हें भर रात व दिन की नींद कम पड़ती है
तिस पर उंगली भर गिन कर परमात्मा को प्राप्त करने की
कोशिश करना मजाक तो नहीं है!
हे कूडल संगम देव! अपनी नाक पकड़ कर मुक्ति चाहने-
वाले इन निर्लज्जों को मैं क्या कहूँ ? ॥१३३॥

(५८९)

हे प्रभो! तुम्हें न समझने के कारण हाथ में घासपूस!
तुम्हें प्रणाम न करने के कारण गले में पाश!
मरोड़ना क्यों कर, धोना क्यों कर?
नाक पकड़ कर डुबकी बारंबार लगाना क्यों कर?
कूडल संगम देव के शरणों में से डोहर कक्कय्या जी ने किस
नदी में नहाया था? बताओ॥ १३४॥

(६२१)

अरे अरे, पाप कर्मी,
अरे अरे, ब्रह्म हत्यारा,
एक बार प्रणाम कर रे,
एक बार प्रणाम करने से तेरे पाप कर्म भाग जायँगे।
यदि सब तरह से अपना प्रायश्चित्त करेगा तो तुझे सुवर्ण पहार प्राप्त होगा।
एक मात्र को प्रणाम कर और वह एक मात्र है हमारा कूडल संगम देव ॥ १३५ ॥

(७७३)

पंडित हो चाहे पामर, अपना संचित कर्म आप भूँजे बिना वह घटता नहीं है।
प्रारब्ध कर्म भोगे बिना कोई रह भी नहीं सकता है।
श्रुतियाँ डंके की चोट यही कहती हैं।
तुम किसी भी लोक में क्यों न रहो, वह तुम को छोड़ेगा नहीं।
इसलिये वही धन्य है जो कूडल संगम देव को अपना कर्म फल युक्त—आत्म नैवेद्य चढ़ाता है ॥ १३६ ॥

(८३१)

हे देव! आपकी करुणा के शिवा—
न करनेवाला मैं हूँ, न देनेवाला मैं हूँ और न माँगने
वाला ही मैं हूँ।
घरेलू दासी के सुस्त पड़ जाने से मालकिन अपना काम
आप कर लेने की भांति
हे कूडल संगम देव! सुनो अपना कार्य अपने को
कर लेना चाहिए॥ १३७॥

तीर्थ यात्रा मत करो

(५८१)

जहाँ जहाँ पानी दिखाई दे, तहाँ तहाँ उस में गोते
लगाते हैं;
जहाँ जहाँ पादप दिखाई दे, तहाँ तहाँ उसकी परिक्रमा
करते हैं!
उठ जाने वाला पानी व सूख जाने वाला पेड़,
हे कूडल संगम देव! जिन्होंने इन्हें पसंद किए हैं
वे आखिर तुम्हें क्या जानें?॥ १३८॥

(६४४)

सोते में असनान करनेवाले भाइयो सोते में असनान
करनेवाले स्वामियो,

असनान मत करोजी, असनान मत करो।
परनारी का संग तजो, जी,
परधनामिष तजो।
हे कूडल संगम देव! इन्हें तजे बिना सोते में असनान
करने जावे तो
वह सोता आप सूख खाली हुये बिना और क्या करेगा?
॥ १३९ ॥

परमात्मा का ध्यान मन से करो

(६)

हे कूडल संगम देव! क्या ऐसा कहा जाय
कि हाथी बड़ा : अंकुश छोटा? नहीं।
पहाड़ बड़ा : कुलिश छोटा? नहीं।
अंधकार बड़ा: प्रकाश छोटा? नहीं।
और विसरण बड़ा: तुम्हें सरण करनेवाला मन छोटा?
कभी नहीं॥ १४० ॥

(३६४)

चकोर की चिंता है चन्द्रोदय की;
कमल की चिंता है सूर्योदय की;
भ्रमर की चिंता है पुष्प-पराग की;
अपनी चिंता है कूडल संग सुमिरन की! ॥ १४१ ॥

(३८२)

कालिख को बहुत समय तक धोने से क्या वह सफेद बन सकती है?
चाहे जो हो कर्म उसका पिंड नहीं छूटने का होता है।
अनंत कोटि सन्मान करने से क्या प्रयोजन?
जब एक पल की उदासी उसे बिगाड़ देती है!
हे कूडल संगम देव! तुम पर विश्वास रखते हुए भी
विश्वास न करनेवाला पाखंडी मैं हूँ ॥ १४२ ॥

(४९९)

जब आपका स्मरण हो आता है, तभी अपने लिए पौ फटता है;
जब आपका विस्मरण हो आता है, तभी अपने लिए दिन डूबता है।
मुझे आपका स्मरण ही जीवन है;
हे स्वामी! मुझे अपका स्मरण ही प्राण है।
हे कूडल संगम देव! कृपया मेरे हृदय पर आप अपनी
चरण मुद्रा लगाइये व मुख पर षडाक्षरी लिखिए ॥१४३॥

(५००)

मेरे काय को डाँड बनाओ,
मेरे सिर को तूंबी बनाओ,

मेरी नस को तार बनाओ,
मेरी उंगली को तीली बनाओ,
हे कूडल संगम देव! तुम बत्तीस राग गाओ और मुझे
खूब बजाओ ॥ १४४ ॥

(५२०)

हे भाई! पर चिंता लेकर हम क्या करें
क्या अपनी चिंता हमें काफी नहीं है?
'हम पर कूडल संगय्या प्रसन्न होगा कि नहीं'
हमें यह चिंता बिछाने को भी है और ओढ़ने को भी!
॥ १४५ ॥

(६००)

वेद पढ़े तो क्या, शास्त्र पढ़े तो क्या?
जप करे तो क्या, तप करे तो क्या?
क्या करे तो क्या जब तक वह कूडल संगय्या जी के
दिल को जा नहीं लगता? ॥ १४६ ॥

(६३८)

केसरिया रंगवाला काले को ध्यावे तो क्या वह काला बनेगा?
काला आदमी केसरिया रंगवाले को ध्यावे तो क्या वह
केसरिया बनेगा?
दरिद्र अमीर को ध्यावे तो क्या वह अमीर बनेगा?

हे कूडल संगम देव! पुरातनों को ध्यान कर धन्य हो गए
कहनेवाले इन बातूनी रंजकों को मैं क्या कहूँ ? ॥ १४७॥

(६८५)

शिव भक्त बन कर शिव जी को पकड़ूँगा करके गया तो,
वह तुझे चकनाचूर करेगा, बुकुनी करेगा ;
तेरे नामों निशान तक मिटा देगा, खाक उड़ा देगा।
इतना होने पर भी यदि तू कूडल संगम देव पर प्रगाढ़
विश्वास रखा तो,
अंत में वह तुझे अपना जैसा बना लेगा ॥ १४८॥

(६९३)

जागरण, सपना तथा सुषुप्ति में यदि तुम्हें छोड़
और किसी को ध्याऊँ तो सिर दंड, सिर दंड!
मैं झूठा साबित होऊ तो सिर दंड, सिर दंड!
हे कूडल संगम देव! तुम्हारे बिना किसी अन्य को ध्याऊँ
तो सिर दंड, सिर दंड! ॥ १४९॥

भगवान भक्ति प्रिय होता है

(६०)

मेरा वाम-क्षेम तेरा है,
मेरी हानि-वृद्धि तेरी है,

मेरा मान-अपमान तेरा है—
हे कूडल संगम देव ! क्या वेल को कभी अपना ही फल
दूभर लगा था ? ॥ १५० ॥

(६६)

तेरे प्रसन्न होने से प्रभु ठूंठा भी पनपने लगता है ;
तेरे प्रसन्न होने से प्रभु वहिला भी दूध देने लगती है ;
तेरे प्रसन्न होने से प्रभु विष भी अमृत हो जाता है ;
हे कूडल संगम देव ! तेरे प्रसन्न होने से समस्त पदार्थ अपने
सामने ही आ उपस्थित हो जाते हैं ॥ १५१ ॥

(७०)

मटका बनाने मट्टी ही पहले ;
गहना बनाने सोना ही पहले ;
शिवपथ बूझने गुरुपथ ही पहले ;
कूडल संगम देव को समझने शरण संग ही पहले चाहिए
॥ १५२ ॥

(१६९)

जैसे बड़ी नदी आप बहकर तालाब को भर देती है
वैसे ही हर के देते समय छप्पर फाड़कर देता है !
अप्राप्य वस्तु भी प्राप्य बन जाती है !
राज परिवार भी अपने हाथ की कठपुतली बन जाता है !

हे कूडल संगम देव! अगर तुमको परम निरंजन भुला देगा
तो उस समय पत्थर में भरे हाँडी को खरीदने वाले का
बदहाल होगा तुम्हारा ॥ १५३ ॥

(१८०)

राह भटक कर तडपो मत, विभूति खरीद लाओ मत;
प्रसन्नता से एक बार "शिव प्रणाम" कहो भाई;
कूडल संगम देव भक्ति-लंपट होने के कारण
शिव शब्द लेनेवाले को वह मुक्ति प्रदान करेगा
॥ १५४ ॥

(२१२)

भक्ति नहीं करनी चाहिए;
क्यों कि करगस के समान जाते समय भी काटता है और
आते समय भी!
हे कूडल संगम देव! घट सर्प के यहाँ कहीं हाथ की
अजागरूकता हो तो,
उस हाथ को वह डसे बिना यों ही छोड़ेगा क्या?
॥ १५५ ॥

(२७१)

तामस से घिर कर, अपनी आँखों को बिगाड़ दिया था
मेरी भक्ति ने;

कामाग्नि के लिये मुझे आहुति दे मारी थी मेरी भक्ति ने ;
पेट के लिए मुझे दग्ध कर किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया था
मेरी भक्ति ने।
हे कूडल संगम देव! शतमूर्ख हूँ मैं ; क्यों कि शत्रु की
शरण में गई थी मेरी यह भक्ति ! ॥ १५६ ॥

(२८७)

लौकिकों को देखकर उनके जैसे नाचूँगा और आलापूँगा ;
तार्किकों को देखकर उनके जैसे नाचूँगा और आलापूँगा ;
सहज गुण मुझ में है ही नहीं,
निज भक्ति मुझ में है ही नहीं,
यदि एकोभाव मुझ में होता तो
हे कूडल संगम देव ! मुझ पर कृपा क्यों नहीं करते ? ॥१५७॥

(२९८)

तीन सौ साठों दिन साधना करने के बाद
रणरंग में हाथ की करामात भूल जाने की भांति हुई
मेरी भक्ति ।
कितने ही समय तक लिंगार्चना करने से क्या लाभ ?
जब मन में दृढ़ता ही नहीं है ।
हे कूडल संगम देव! घड़े भर दूध को उड़ेल कर
क्या उसे फिर कभी भरा जा सकता है ? ॥ १५८ ॥

(३००)

युद्ध क्षेत्र से सिपाही के भाग जाने से
उसके स्वामी की हार हुआ चाहती है।
जितवाओ, हे कूडल संगम देव! मुझ से लड़ाकर जितवाओ
मेरे तन मन व धन में किसी प्रकार की वंचना नहीं रहे है।
॥ १५९ ॥

(३४९)

भक्ति हीन दीन हूँ मैं अतः कक्कय्याजी के यहाँ
भक्ति माँगी ;
चेन्नय्याजी के यहाँ माँगी ;
दासय्याजी के यहाँ भी माँगी।
हे कूडल संगम देव! सभी पुरातन भक्त लोग जुट कर
मुझे भक्ति-भिक्षा दें तो मेरा भांडा तब भर जाय ॥१६०॥

(३७८)

जो मिलाप करते समय मन न पिघले,
जो स्पर्शन करते समय तन न पुलकित होवे,
जो दर्शन करते समय आनंद बाष्प न झरें,
जो बोलते समय कंठ गद्गद न होवे तो—
कूडल संगम देव की भक्ति की ये जो पहचानें हैं—

मुझ में न होने के कारण मैं ढोंगी हूँ, जान लो भाई
॥ १६१ ॥

(४०१)

मैं तो विश्वास कर लेता हूँ लांछन देख कर,
परंतु तुम्हीं जानते हो उन के अंतरंग को ;
क्यों कि मुझ बंदे को अपने काम के बिना राजा की
खबर से क्या मतलब ?
हे कूडल संगम देव ! तुम्हारे शरण रत्न-मौक्तिक के साँचे
होते हैं ॥१६२॥

(४१३)

कोई अश्व-छत्रिवाले दिखाई पड़े तो उनके कदमों पर
लोट कर उनके तलुवे सहलाते हैं ;
यदि बेचारा कोई भक्त दर पर आवे तो " यहाँ
जगह नहीं है उधर खसको " कह देते हैं !
क्या हमारा स्वामी कूडल संगम देव उनको पकड़ कर
उनकी नाक काटे बिना छोड़ेगा ? ॥ १६३ ॥

(४७९)

पिता तुम हो माता तुम हो,
बंधु तुम हो परिवार तुम हो,

तुम्हारे शिवा अपना कोई नहीं है,
मुझे दूध में भिगोओ चाहे पानी में, प्रभु ! ॥ १६४ ॥

(४८०)

मेरी आपत्ति-सुख-दुःख तुम्हीं हो,
मेरा और कोई तहीं है ; हर हर ! तुम्हीं हो,
हे कूडल संगम देव ! मेरे मातापिता भी तुम्हीं हो
यह अच्छी तरह से जान लो प्रभु ! ॥ १६५ ॥

(४९२)

मेरे वचनों में तुम्हारा नामामृत समा कर
मेरे नयनों में तुम्हारी मूरत समा कर
मेरे मन में तुम्हारा स्मरण समा कर
मेरे कानों में तुम्हारी कीरत समा कर
हे कूडल संगम देव ! तुम्हारे चरण कमलों में मैं आप
समा जाऊँ ! ॥ १६६ ॥

(७१३)

अपने बड़े भाई, छोटे भाई व सगोत्रज ही क्यों न हों,
यदि वे लिंगरिक्त हों तो उन्हें अपना नहीं कह सकता हूँ !
हे कूडल संगम देव ! यह बंधु-भक्ति नायक नरक है !
॥ १६७ ॥

अपने देव की पूजा आप करें

(१६१)

डाढ़ी के पकने के पहले, गाल पर झुर्रियाँ पड़ने के पहले,
शरीर सूख कर कांटा हो जाने के पहले,
दांत गिर कर, पीठ झुक कर, अन्यो का मुहताज वनने के पहले,
घुटनों पर हाथ टेक लकुटिया धरने के पहले,
बुढ़ापे से फीका पड़ने के पहले
और मृत्यु से घिर जाने के पहले,
कर पूजा हमारे कूडल संगम देव की ॥ १६८ ॥

(१८२)

अपनी भूख मिटाने व अपनी पत्नी से समागम करने के लिए
कोई अपने बदले में किसी दूसरे से कह सकता है क्या ?
करनी चाहिए भक्ति, मन से;
करनी चाहिए भक्ति, तन से।
यदि भक्ति में केवल तन लगाकर मन न लगावे तो
कूडल संगम देव उन्हें जरा भी पसंद नहीं करेगा ॥१६९॥

(१८३)

अपने आश्रित रति-सुख व अपना भोजन
अपने बदले में क्या और किसी से कराया जा सकता है ?

अपने लिंग को करनेवाले नित्य-नियमों को
अपने बदले में क्या और किसी से कराया जा सकता है ?
हे कूडल संगम देव! ऐसे लोग आपकी पूजा यों ही उपचार के लिए करने से ज्यादा तुम्हें कहाँ जानते हैं ? ॥ १७० ॥

त्रिविध दासोह करो

(१९९)

कर के दे के हमने लिंग की पूजा की है कहनेवाले
तुम सब सुनो
डेढ़ आने का जूता बाहर उतार कर मंदिर के भीतर जा
नमस्कार करनेवालों की भांति—
अपने जूते का ध्यान छोड़ कर तुम्हें भगवान का ध्यान कहाँ !
धन जमाओ मत, जमाओगे तो तुम्हें भव मिले ! और
वह न छूटे !
अतः समस्त धन कूडल संग के शरणों को समर्पण करना
ही उचित समझो ॥ १७१ ॥

(२०७)

जब तक वह त्रिविध दासोह नहीं जानता है;
तब तक नाट्य करे तो क्या ? गायन करे तो क्या ?
और खूब पढ़े तो क्या ?

क्या नाटच नहीं कर सकता है मोर?
क्या गायन नहीं कर सकता है तार?
और क्या पढ़ नहीं सकता है तोता?
कूडल संगम देव ऐसे भक्तिरिक्तों को पसंद नहीं कर ता है
॥ १७२ ॥

(२०८)

क्या शास्त्र को महान बताऊँ? वह तो कर्म का भजन
करता है!
क्या वेद को महान बताऊँ? वह तो प्राणि वध बताता है!
क्या स्मृति को महान बताऊँ? वह तो अपने सामने ही
रखी हुई चीज को अन्यत्र ढूंढ़ती है
वहाँ कहीं भी कूडल संगम देव न होने के कारण त्रिविध
दासोह के बिना अन्यत्र कहीं भी मत ढूँढ़ना चाहिए आप को
॥ १७३ ॥

(२२२)

तुम भोजन करते समय अन्यों को 'नहीं' कहते हो
तुम पहनते समय अन्यों को 'नहीं' कहते हो,
लिंग को भी 'नहीं' जंगम को भी 'नहीं' कहते हो,
और पधारे हुए पुरातन भक्तों को पहले ही 'नहीं'
कह देते हो!

किंतु मृत्यु के समय अपने शव को मंदिर ले जाने को कहते हो,
क्या भगवान तुम्हारी लाश की बेगारी करने के लिए है?
॥ १७४ ॥

(३०७)

तिल भर भी मुझ में भक्ति है नहीं,
और उस भक्ति की युक्ति को भी मैं नहीं जानता हूँ।
तन वंचक, मन वंचक व धन वंचक हूँ मैं।
हे कूडल संगम देव! मेरी बातें होती हैं थोथी! ॥ १७५ ॥

(३१०)

कहता तो हूँ कि अपना अर्थ, प्राणाभिमान तुम्हारा है।
फिर भी आशा से मैं अभी छुटकारा न पाने के कारण
अपने को भक्त कैसे बताऊँ?
जब तक मैं कूडल संग के शरणों की समस्त रति को
प्राप्त नहीं होता हूँ,
तब तक मैं अपने को शरण कैसे कहाऊँ? ॥ १७६ ॥

(३१५)

बरबाद हो जाने तक लापरवाही करके
बाद को पछतानेवाला मति भ्रष्ट हूँ मैं, हे लिंग प्रभु!
तन का लोभ, मन का लोभ व धन का लोभ

मुझे भ्रम में डाल कर सता रहे हैं।
हे कूडल संगम देव! जिन्होंने अपना तन मन व धन
तुम पर निछावर किया है उन का घरेलू आदमी हूँ मैं।
॥ १७७ ॥

(३१८)

कथनी के द्वारा श्रोत-सुख देना आसान है;
परंतु अपनी करनी व सत् क्रिया के द्वारा अपने को
भक्त सिद्ध करना मुश्किल है।
लिंगमुखोद्भव शरण के विना
अर्थ प्राणाभिमान और किसी को भी सोहता नहीं है।
तव कूडल संग के शरणों का भक्ति-भांडार
मुझे कैसे साध्य होगा? तुम ही बताओ, हे तात!॥१७८॥

(४३५)

सुवर्ण में से एक रेखा, साड़ी में से एक धागे को
आज के लिए या कल के लिए चाहिए करके उसकी
अपेक्षा करूँ तो,
तुम्हारी सौगंद! तुम्हारे पुरातन भक्तों की सौगंद!
हे कूडल संगम देव! तुम्हारे शरणों के बिना और किसी
को भी मैं नहीं जानता हूँ॥ १७९ ॥

(४५८)

प्रभु! अपने शरणों के दासोह के लिए ऐसा करो
कि मेरा तन, मन व धन बासी न पड़े।
ऐसा करो कि मेरा तन दासोह के लिए फूल कर कुप्पा
हो जावे;
मेरा मन दासोह के साथ घुल मिल जावे;
मेरा धन दासोह के लिए खप जावे।
हे कूडल संगम देव! तुम्हारे शरणों के प्रसाद में
मैं निरंतर लीला, भजन देख, मिल, इच्छा सुखी बनूँ और
मेरा बेड़ा पार हो॥ १८०॥

(७०७)

तन माँगे तो दूँ, मन माँगे तो दूँ;
धन माँगे तो दूँ, माँग, माँग रे डरपोक!
नयन माँगे तो दूँ, सिर माँगे तो दूँ;
हे कूडल संगम देव! तुम्हारे पुरातन भक्तों के यहाँ
मैं ये सब तुम्हीं को अर्पण कर परिशुद्ध बना हूँ॥ १८१॥

(८२७)

भूख, प्यास, निद्रा व विषयों को भुला दिया—तुम्हारे कारण,
काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सरों को भुला दिया-
तुम्हारे कारण,

पंचेंद्रिय, सप्तधातु व अष्टमदों को भुला दिया-तुम्हारे कारण हे कूडल संगम देव प्रभु ! यह सब यदि तुम्हारे शरणों को आप्यायन हो, तो समझो मैं निहाल हो गया ॥ १८२ ॥

(८२८)

जब मैंने यह तन आपका कह दिया तब मेरा अपना
दूसरा तन है नहीं ।
जब मैंने यह मन आपका कह दिया तब मेरा अपना
दूसरा मन है नहीं ।
जब मैंने यह धन आपका कह दिया तब मेरा अपना
दूसरा धन है नहीं ।
हे कूडल संगम देव ! यों जब मैंने ये तीनों पदार्थ
आपके कह दिये
तब क्या मैं कभी इसके विपरीत सोच सकता हूँ ? कभी भी
नहीं ॥ १८३ ॥

(९३५)

क्या कभी भक्तिदासोह भक्त बना था ?
क्या कभी युक्तिदासोह युक्त बना था ?
क्या कभी ममकारदासोह ऐक्य बना था !
अरे भाई, दासोह तो चाहिए सभी में ;

किंतु इस दासोह की सुजनता को केवल हमारे
कूडल संगय्या जानते हैं ॥ १८४ ॥

भगवान एक ही है

(५२८)

" तुम स्वामी हो, तुम शाश्वत हो "
जग तुम्हें पहचान ले इस कारण तुम प्रकट हुए ।
" महादेव, महादेव "
इससे आगे कोई शब्द ही नहीं है तुम्हें संबोधन करने
के लिए !
पशुपति सारे जग का एकोदेव है ;
किंतु क्या स्वर्ग, क्या मर्त्य और क्या पताल
यत्र तत्र सर्वत्र जो एक मात्र देव है वह है हमारा
कूडल संगम देव ॥ १८५ ॥

(५३२)

श्रुतिततिसिर पर 'अत्यतिष्ठद्दशांगुल' को मैं क्या कहूँ ?
घन के लिए घन महिम को व मन के लिए अगोचर को
मैं क्या कहूँ ?
हमारा महादानी कूडल संगम देव 'अणोरणीयान महतो
महीयान' है ॥ १८६ ॥

(५३३)

हे कूडल संगम देव! सकल निष्कल दोनों में तुम समाये रहने के कारण,
सकल तुम ही हो देव, निष्कल तुम ही हो ;
विश्वतोचक्षु तुम ही हो देव, विश्वतोमुख तुम ही हो ;
विश्वतो बाहु तुम ही हो देव और विश्वतो पाद तुम ही हो।
॥ १८७ ॥

(५३४)

हे कूडल संगम देव! जिधर देखूँ उधर तुम ही हो देव ;
सकल विस्तार के रूप तुम ही हो देव!
विश्वतो चक्षु तुम ही हो, विश्वतोमुख तुम ही हो देव ;
विश्वतो बाहु तुम ही हो और विश्वतोपाद तुम ही हो देव।
॥ १८८ ॥

(५३६)

मुख से रुद्र, भुज से विष्णु, जंघा से अज का जनन है!
चरणों से इन्द्र, मन से चन्द्र, चक्षुओं से सूर्य का जनन है!
मुँह से अनल, प्राण से अनिल, नाभि से अंतरिक्ष का जनन है!
सिर से तैंतीस करोड़ देवता लोगों का व पादतल से भूमि का जनन है!

श्रवणों से दश दिशाओं का जनन है !
अक्षय अगणित ने अपनी कुक्षी में जग को निक्षेप किया !
सहस्र सिर, सहस्र नयन, सहस्र कर, सहस्र चरण !
ऐसे सहस्रों के समान हैं हमारे कूडल संगम देव !॥१८९॥

(५४७)

उपनी छाती फुला फुला कर बको मत कि भगवान दो हैं,
तीन हैं—
भगवान तो एकला है और उसे दुकेला बताना असत्य है।
वेद ने भी कह दिया है कि कूडल संगम देव के बिना
और कोई देवता है ही नहीं ॥ १९० ॥

(५५८)

गोट खा कर गल जानेवाले देवता को,
आग से ऐंठन खानेवाले देवता को मैं कैसे सही देवता बताऊँ ?
अवसर पड़ने पर बेचे जानेवाले देवता को मैं कैसे सही
देवता बताऊँ ?
डर लगने पर गाड़े जानेवाले देवता को मैं कैसे सही
देवता बताऊँ ?
अतः सहज भाव निजैक्य कूडल संगम देव ही एकमात्र
देवता है ॥ १९१ ॥

(५६३)

मटका एक देवता, सूप एक देवता, पथ का कंकड़
एक देवता,
कंघी एक देवता, धनुष की सिंजिनी एक देवता,
पतेली एक देवता और टोंटेदार लोटा भी एक देवता!
यह एक देवता और वह एक देवता कह कर अपने पग
धरने के लिए भी खाली जगह न रख छोड़ी है!!
जान लो भाई, देवता एक ही है और वह है हमारा
कूडल संगम देव ॥ १९२ ॥

(६१५)

देव तो होता है एक ही; पर उसके नाम होते हैं कई;
परम पतिव्रता का पति होता है एक ही;
यदि वह दूसरे की ओर झाँके तो उसके कान नाक काट
देता है प्रभु!
हे कूडल संगम देव! कई एक की झूठन खानेवालों को
मैं क्या कहूँ? ॥ १९३ ॥

(६१८)

विश्वस्त पत्नी का पति एक मात्र होता है;
विश्वस्त भक्त का भगवान भी एक मात्र होता है।
मत! मत! अन्य देवों का संग मत कर!

मत! मत! अन्य देवों का संग व्यभिचार है, जान लो
भाई ॥ १९४ ॥

परमात्मा अप्रतिम है

(७४३)

हे कूडल संगम देव!
जग विस्तृत, गगन विस्तृत व उससे भी विस्तृत है
तुम्हारा विस्तार;
पातल से परे, बहुत परे हैं तुम्हारे श्री चरण;
ब्रह्मांड से परे, बहुत परे है तुम्हारा श्री मुकुट!
हे अगम्य, अगोचर व अप्रतिम लिंग!
ऐसे महान तुम मेरी हथेली में आ कर चुल्लू भर हो गए न!!
॥ १९५ ॥

(७९८)

श्वान ज्ञान, गज ज्ञान व कुक्कुट ज्ञान नामक
ज्ञान त्रय क्या हुए?
हे कूडल संगम देव! तुम्हें न समझने का सारा ज्ञान
अज्ञान है॥ १९६ ॥

(८३८)

लोहा पारस से लिपटना छोड़ कर क्या कहीं पारस पारस से
लिपटेगा?

प्रसाद अंग धारी को छोड़ कर क्या कहीं लिंग धारी के
लिए होता है ?
अणोरणीयान महतो महीयान-
कूडल संगम देव का रूप बड़े से बड़ा है और छोटे से
छोटा है
और वह वाक् व मन को अगोचर होता है—
वैसे ही प्रसाद भी निरूप व लिंगैक्य होता है॥ १९७॥

(९५०)

महालिंगस्थान इत्यादि महालिंग के नाम के विना और
कुछ नहीं हैं,
रूप निरूप से परे होता है लिंग,
काय संबंध से परे होता है लिंग,
महाघन से तो परे बहुत परे होता है लिंग !
कूडल संगम देव की थाह कोई भी नहीं ले सकता है
॥ १९८ ॥

जीते जी समरस सुख प्राप्त करो

(१५३)

गीत जाननेवाला सयाना नहीं, बातें जाननेवाला सयाना
नहीं ;

सयाना सयाना है, सयाना वह है जो लिंग को खूब
पतियाता है;
सयाना वह है जो लिंग के वास्ते अपना सब कुछ दे सकता है;
सयाना वह है जो जमराज के मुँह रूपी तलवार को टुकडे
टुकडे कर पार उतरता है;
और सयाना वह है जो हमारे कूडल संग का शरण बना है!
॥ १९९ ॥

(४९०)

न वार जानता हूँ मैं न दिन जानता हूँ,
कुछ भी नहीं जानता हूँ, प्रभु!
न रात जानता हूँ मैं न दिन जानता हूँ,
कुछ भी नहीं जानता हूँ, प्रभु!
हे कूडल संगम देव! तुम्हारी पूजा कर मैंने अपना सब
कुछ भुलादिया ॥ २०० ॥

(५१०)

प्रभु! तुम्हारे अनुभाव से मेरे तन का नाश हुआ।
प्रभु! तुम्हारे अनुभाव से मेरे मन का नाश हुआ।
प्रभु! तुम्हारे अनुभाव से मेरे कर्म का नाश हुआ।
हे कूडल संगम देव! मैंने तुम्हारी भक्ति का अनुभव तब
किया

जब तुम्हारे शरणों ने उसकी सचाई को पग पग पर और
भांति भांति से साबित कर दिखाया॥ २०१ ॥

(५२२)

निर्लज्ज बना, बेशर्म बना ;
कुल हीन बना, छल हीन बना ;
हे संगय्या आपको पूज कर भव हीन बना मैं !
हे कूडल संगम देवय्या! आपके यहाँ पहुँच कर मैं
जन्मांतर हीन बन गया हूँ !! ॥ २०२ ॥

(६६४)

बिच्छू का गर्भ होना ही उसका अपना अंत है;
केले के पेड़ में फल लगना ही उसका अपना अंत है;
रणरंग पर सिपाही का डर खाना ही उसका अपना अंत है!
हे कूडल संगम देव ! भक्त के पास भक्ति करने वाला मन
ही न रहे तो समझो वही उसका अपना अंत है !
॥ २०३ ॥

(८४१)

ज्ञान के हाथों अज्ञान का नाश देखो ;
ज्योति के हाथों तमांध का नाश देखो ;
सत्य के हाथों असत्य का नाश देखो ;

पारस के हाथों अवलोह का नाश देखो ;
कूडल संगम देव के अनुभाव के हाथों मेरे अपने मन का
का नाश देखो ! ॥ २०४ ॥

(८४७)

ओले के समान, लाख की पुतली के समान
अपने तन को गला कर प्राप्त करनेवालों के सुख का वर्णन
मैं किन शब्दों में करूँ ?
अपने नयनों के आनंद बाष्प की झड़ी लग गई थी प्रभु !
हमारे कूडल संगम देव के यहाँ पहुँच कर प्राप्त करनेवाले
सुख का वर्णन मैं किन शब्दों में करूँ ? ॥ २०५ ॥

(८५२)

नयनों ने जब पूर्ण हो गए तब देखना छोड़ दिया ;
कानों ने जब पूर्ण हो गए तब सुनना छोड़ दिया ;
हाथों ने जब पूर्ण हो गए तब पूजना छोड़ दिया ;
मन ने जब पूर्ण हो गया तब ध्यानना छोड़ दिया महंत
कूडल संगम देव का ! ॥ २०६ ॥

(८६८)

कुल मद के उतरने के पहले तुम क्यों कर शरण बनते हो ?
विधि वश से छूटने के पहले तुम क्यों कर शरण बनते हो ?

अभिमान व स्वार्थ के बंधन से छूट कर
किंकर किंकर किंकर बन कर रहना चाहिए !
हे कूडल संगम देव! दही के जमाते समय दूध के दूधत्व
नष्ट हो कर उस में से उस से भी बढ़िया घृत कढ़ने
समान होते हैं तुम्हारे शरण ! ॥ २०७ ॥

(८६९)

मट्टी का मटका फिर मट्टी नहीं बन सकेगा अपनी उन
सब क्रियाओं को उलट कर ;
माखन का घृत फिर माखन नहीं बन सकेगा अपनी उन
सब क्रियाओं को उलट कर;
पारस से बना सुवर्ण फिर लोहा नहीं बन सकेगा अपनी
उन सब क्रियाओं को उलट कर ;
पानी से बना मोती फिर पानी नहीं बन सकेगा अपनी
उन सब क्रियाओं को उलटकर।
ठीक वैसे ही कूडल संग का शरण फिर मानव नहीं बन
सकेगा अपनी उन सब क्रियाओं को उलटकर ॥ २०८ ॥

(८७३)

हे कूडल संगम देव ! तुम्हारे शरण
उपमातीत, काल रहित, कर्म रहित व भाव विरहित होते हैं
॥ २०९ ॥

(८७४)

हे कूडल संगम देव! तुम्हारे शरण
भव में जन्म लेनेवाले नहीं हैं, संदेह सूतकी नहीं हैं;
वे आकार निराकार रहित हैं।
वे कायवंचक नहीं हैं, जीव वंचक नहीं हैं,
वे शंकातीत हो कर बड़े महिम हैं और उपमातीत हैं
॥ २१० ॥

(८७८)

जमीन तो एक ही है अछूतों के आंगन व शिवालय के
लिए;
जल तो एक ही है शौचाचमन के लिए;
कुल तो एक ही है आत्मज्ञानी के लिए;
फल तो एक ही है षट्दर्शन मुक्ति के लिए;
हे कूडल संगम देव! तुम्हारी थाह भी एक ही है थाह
लेनेवालों के लिए! ॥ २११ ॥

(९०३)

जग को घेर लिया है तुम्हारी माया ने
और तुम्हें घेर लिया है मेरे मन ने, यह तमाशा देखो!
तुम जग के लिए शक्तिशाली हो,

किंतु तुम से भी शक्तिशाली हूँ मैं, यह जान लो प्रभु !
हे कूडल संगम देव ! गज दर्पण में समा जाने की भांति
तुम मुझ में समा गये हो प्रभु ! ॥ २१२ ॥

(९२२)

निष्कल को सकल बना सकनेवाला ही शरण है;
और उस सकल को निष्कल बना सकनेवाला ही लिंगानु-
भावी है।
निष्कल को सकल न बनावे तो उसे शरण कैसे बताऊँ ?
और उस सकल को निष्कल न बनावे तो उसे लिंगानुभावि
कैसे बताऊँ ?
हे कूडल संगम देव ! यदि यह द्वैत मिटकर एकमेक हो
जाय तो क्या तुम्हारे पास अवकाश बचा रहेगा ? ॥२१३॥

(९२३)

देवलोक व मर्त्यलोक की सीमा में जब तक कोई पड़ा रहता है
तब तक वह शरण बनेगा कैसे ?
हे कूडल संगम देव ! मर कर असीम हो जाने की बात
जो कहता है,
वह ईख की नोक को चाटने के समान निस्सार समझो !
॥ २१४ ॥

(९२५)

किसी भी चीज को साध सकते हैं,
चाहे वह बहुत मुश्किल ही क्यों न हो,
"मैं कौन हूँ?" यह वही साध सकता है जो कूडल संगम देव से अनुग्रहीत हो ॥ २१५ ॥

(९२८)

हे कूडल संगम देव! गुरु-शिष्य संबंध स्थाई हो जाने का लांछन यही है
कि शिष्य को अपना पूर्वाश्रय तजकर पराश्रय पकड़ना चाहिए।
सो भी, आग में धरे ईंधन रूपी निधि की भांति अपने गुरु में शिष्य को घुल मिल जाना चाहिए ॥ २१६ ॥

(९२९)

जब तक समकला, समसुख नहीं जाना जाता है,
तब तक लिंग की पूजा करने से क्या प्रयोजन?
जब तक कूडल संगम की पूजा एक नदी के दूसरी नदी में ऐक्य हो जाने की भांति न हो,
तब तक लिंग की पूजा करने से क्या प्रयोजन? ॥ २१७ ॥

(९४१)

दशदिशा, धरा गगन आदि नामक इन चीजों को मैं
नहीं जानता हूँ प्रभु !
"लिंगमध्ये जगत् सर्वम्" को मैं नहीं जानता हूँ प्रभु।
हे कूडल संगम देव ! अम्बुधि में पड़े ओले के समान
भिन्नभावानभिज्ञ होकर
केवल लिंगस्पर्श सुख में 'शिव शिव' मंत्र जप रहा हूँ!
॥ २१८ ॥

(९४७)

क्या कहूँ मैं क्या कहूँ जो एक से दो हुओं का;
क्या कहूँ मैं क्या कहूँ जो दो से एक हुए का;
क्या कहूँ मैं क्या कहूँ अविरल घन का
हे महादानी कूडल संगम देव! आप से मैं क्या कहूँ
आप तो सब जानते ही हैं ॥ २१९ ॥

(९५६)

घन गंभीर महाघन में के घन से भी घन बना था मैं,
और कूडल संगम देव नामक महाज्योति की ज्योति में मैं
समाया हुआ हूँ।
इस स्थिति को बतानेवाले शब्द तक नीरव हुए का वर्णन
मैं किन शब्दों में करूँ ?॥ २२० ॥

(९५७)

समस्त अंधकार के परदे को दूर किए हुए उस स्थिति को देखो !

ज्योति के लिए ज्योति सिंहासन बनकर
ज्योति ज्योति में समाये समागम को !
हे कूडल संगम देव ! यह तुम ही जानते हो ॥ २२१ ॥

(९५८)

अंतरंग बहिरंग व आत्मसंग सब एक ही हैं भाई !
नाद बिंदु कलातीत आदि का आधार तुम ही हो प्रभु !
हे कूडल संगम देव ! आरूढ के मिलन सुख को तुम ही जानते हो ॥ २२२ ॥

———

बसवेश्वर के चुने हुए वचनों की अकारादि

(वचन संख्या दी गयी है)

अर्थ-कोश (क)

अंग = भक्त

अंगस्थल = अंगस्थल, लिंगस्थल, जंगमस्थल में से एक

अजात = जन्म लेने से मुक्त ; भवहीन ; शरण

अनुभाव = निज के या भगवान के अनुभव का साक्षात्कार

आचार्यत्व = अपनी श्रेष्ठता की भावना ; अहंकार

आगम = तंत्र शास्त्र ; वेद

आप्यायन = तृप्ति ; संतुष्टि

आमिष = मद्य, मांस आदि मन को लुभानेवाले पदार्थ ; मोह

आरूढ़ = दुनियादारी से परे ; पहुँचेहुए

ॐ नमः शिवाय = यह षड़ाक्षरी मंत्र है

कायक = शारीरिक परिश्रम से कमाई हुई आज़ीविका

घन = भगवान शंकर

चलते साँप से = फुफकारते साँप से

जर जर और जमीन = कनक, कुवरी और भूमि

जंगम = चर लिंग - वीरशैवों में गुरु का पूज्य स्थान ग्रहण करनेवाला (गुरु, लिंग, जंगम में से एक)

टिंबक टीवक = एक तरह का खेल

दग्ध आशा = मनहूस आशा

दग्ध पेट = मनहूस पेट

दग्ध मन = मनहूस मन

नायक नरक = घोर नरक
निधि = इकट्ठा किया हुवा धन ; संपत्ति
निष्कल = कलारिक्त - निराकार
परिणाम = तृप्ति ; शांति
पाँच = पंचेंद्रिय : – आँख, कान, नाक, जिह्वा व त्वचा
पिंड = ढेर ; समूह
पूर्वाश्रय = अपनी पिछली स्थिति ; पूर्व जन्म
भव = संसार
भवि = जन्म जन्मांतर के जाल में पड़ा रहने वाला ; वीरशैवेतर कोई भी व्यक्ति
भाँडा = बरतन
महंत = महान
महाघन = भगवान शंकर
मुँह की मर्यादा = संभल कर बातें करना
मृड = शंकर
यहाँ – इस पार ; इस संसार में
युक्ति – क्रम ; उपाय ; सही रास्ता ; योग्यता
लांछन=चिह्न ; निशान
लिंग=गुरु, लिंग व जंगम में से एक ; भगवान का द्योतक पत्थर की मूर्ति
लिंग धारी=लिंग को हमेशा धारण किये रहनेवाला ; वीरशैव

13

लिंग वेदी=लिंग के मर्म को जाननेवाला
लिंग शरीरी=लिंगमय शरीर—भगवानमय शरीर ; पहुँचा हुआ भक्त
सिक्के = मोहरें ; आदमी
सुखसार = सुख के सार को जाननेवाला
वहाँ = उस पार ; स्वर्ग में
विकार = अक्रम या शोभा न देनेवाला कृत्य
विषय=इंद्रिय सुख ; सांसारिक आशा
शरण = पहुँचा हुआ शिव भक्त—षटस्थल के पाँचवे स्थल पर पहुँचा हुआ भक्त
शिवाचार = शिव भक्ति
श्वपच = चांडाल ; अस्पृश्य ; हरिजन
सकल = पूर्ण ; पूरा ; कलायुक्त ; साकार
स्थावर = गतिहीन, अचंचल - (Static)
सदाशिव = हमेशा मंगल करनेवाला ; शंकर
संपुट = संदूक ; पेटी
समग्राहक = सबको समान माननेवाला, भेद - भाव न करनेवाला
समयाचार = किसी एक धर्म या मत के अनुकूल आचरण
समयाचारी = किसी एक धर्म या मत के अमुक आचारों को बतानेवाला ; आचार्य
सोहं = वही मैं हूँ ; भगवान मैं ही हूँ ; अद्वैत की भावना

अर्थ-कोश (ख)

'अंग, लिंग व जंगम = शिवजी अपने म ही निहित शक्ति के संयोग से अपने ही लीलार्थ अंग, लिंग के दो रूपों का सृजन करते हैं। अंग शुध्द जीव होता है और उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नही होता है। अतः वह जनन मरण का शिकार बनता है। विपदाओं की चक्की में पिस कर आप विवेकी बनने की अवस्था को जब पहुँचता है तभी वहाँ गुरु पहुँच जाता है। उसे शिक्षा दीक्षा देता है। षटस्थल साधना के व्दारा वह अंग अपने में ही निहित लिंगत्व को पहचानकर लिंगैक्य बन जाता है और हमेशा के लिए मुक्ति पाता है।

कभी कभी अंग लिंग में ऐक्य होने की स्थिति को पहुँचने के बाद भी लोक हितार्थ-अपने भौतिक शरीर का त्याग नहीं करता है। तब वह जंगम कहलाता है। वही जंगम दूसरों के लिए दीक्षा देने की क्षमता अपने पास रखने के कारण गुरु भी बन सकता है।

अष्टावरण = वीरशैव धर्म के अनुसार धार्मिक - श्रद्धा के लिए निम्नलिखित आठ सहायक चीजें होती हैं :—

गुरु = धर्मदर्शी होता है। धर्म - दीक्षा देनेवाला होने के कारण गुरु का गौरव अपने मातापिता से भी ज्यादा किया जाता है। भक्त को भगवान से एक्य करनेवाला होने के कारण गुरु का आदर अपने भगवान से भी

ज्यादा किया जाता है। इस तरह भक्ति के क्षेत्र में गुरु का स्थान सर्वोच्च होता है।

लिंग = यह भगवान का प्रतीक पत्थर की मूर्ति होता है। यह पहले से ही भक्त के शरीर पर चैतन्य रूप मे विद्यमान रहता है और दीक्षा के समय गुरु उस चैतन्य रूपी भगवान को लिंग का आकार दे कर उसी भक्त के हाथ में दे देता है। इस लिंग के प्रति भक्त को चाहिए कि वह रोज अनन्यभाव से भक्ति करे। भक्त इस लिंग को अपने शरीर पर धारण हमेशा किया होता है। इसे अपने शरीर से त्यागना धार्मिक - मौत के बराबर समझा जाता है।

जगम = स्थावर वस्तु से उलटी अर्थवाली गतिवान वस्तु का बोध होता है। तभी तो जंगम जो कि वीरशैवों में मुमुक्षु होता है किसी एक स्थान पर टिकता नहीं है। यदि लिंग को स्थल - मूर्ति समझ लें तो जंगम को चर - मूर्ति समझना चाहिए। धर्म और नीति का उपदेश देता हुआ जगह जगह पहुँचना उसका कर्तव्य होता है। बहुधा गुरु, लिंग व जंगम में कोई भेदभाव नहीं माना जाता है।

पादोदक = यह गुरु चरणों का अभिषेक है जो पतितों को पावन करनेवाला होता है। भक्त लोग इस अभिषेक का सेवन करके अपने को धन्य समझते हैं और अपने हर एक पदार्थ को भी पावन बना लेते हैं इसके सिंचन से।

प्रसाद = यह भगवान की कृपा है। सामान्यतया यह कृपा खाद्य वस्तुओं का रूप ग्रहण कर लेती है। अतः पवित्र भोजन से इसका बोध होता है। पहले भक्त गुरु को भोजन देता है। गुरु संप्रीत हो कर उस भोजन को अपने अमृत स्पर्श से पवित्र बना कर उसी भक्त को लौटा देता है। इसे प्रसाद कहते हैं।

गुरु और भक्त एक ही जगह बैठ कर एक ही समय पर भुंजित किए जानेवाले भोजन या फल को भी प्रसाद कहते हैं।

विभूति = यह भूरि - विभा या वैभव है। शास्त्र की दृष्टि से इसका बोध एक 'पवित्र राख' से होता है। भगवान शंकर स्मशानवासी बताया जाता है और उसे यह राख बहुत पसंद आने के कारण अपने सारे अंगांगों में इसे लेप लेता है। अतः भगवान शंकर के भक्त वीरशैव लोग भी इसका उपयोग अपने अंगांगों को लेपने में करते हैं।

रुद्राक्षी = ये एक तरह के पवित्र बीज हैं। शैव सिद्धांतवाले एक मत हो कर मानते हैं कि ये बीज मूलतः रुद्र की अक्षियों से निकले। अतः ये रुद्राक्षी कहलाते हैं। सभी शैव सिद्धांतवाले रुद्राक्षियों से माला बना कर

अपने गले, कलाई व सिर पर पहनते हैं। प्रार्थना के समय जपनी का भी काम लेते हैं रुद्राक्षिमाला से।

मंत्र = यह एक पवित्र सूत्र है जिस में पाँच अक्षर 'नमः शिवाय' होते हैं। शिवजी को प्रणाम करना इस मंत्र का अर्थ है। इस में पाँच अक्षर होने के कारण यह पंचाक्षरी मंत्र कहलाता है। एक अक्षर 'ॐ' के इस मंत्र के साथ जुड़ने से यह "ॐ नमः शिवाय" नामक षडाक्षरी मंत्र बन जाता है। वीरशैवों के लिए इन से श्रेष्ठ मंत्र नहीं हैं।

करणेंद्रिय = आँख, कान, नाक, रसना व त्वचा नामक पंचेंद्रिय।

दासोह = गुरु, लिंग व जंगम के लिए किंकर भाव से दिया जानेवाला भोजन। गुरु के लिए तन, लिंग के लिए मन व जंगम के लिए धन देना त्रिविध दासोह कहलाता है।

दासोहं = शिवजी के प्रति सेव्य - सेवक भाव से की जानेवाली भक्ति।

दिव्य = गरमी से लाल लोहे पर या खौलते तेल में किसी का हाथ रखवाने पर भी यदि उसका हाथ पहले का सा रहा और जरा भी गरम तक नहीं हुआ तो यह माना जाता था कि वह आदमी सच्चा है।

पंचाचार = वैदिक गृहस्थ के पंच महायज्ञों के समान पाँच आचार वीरशैव गृहस्थ के भी होते हैं :—

(i) लिंगाचार = अपने लिंग के प्रति उसका कर्तव्य

(ii) सदाचार = सत् व्यवहार ,,

(iii) भक्ताचार = शंकर के अन्य भक्तों के प्रति उसका व्यवहार

(iv) शिवाचार = शंकर के प्रति उसका व्यवहार

(v) गणाचार = शंकर के परिवार के प्रति उसका व्यवहार

इन पंच आचारों का उद्देश किसी भी वीरशैव को भगवान और अन्य मानवों के प्रति उपयोगी जीवन बिताने के लिए बाध्यं करना ही है। अष्टावरण के समान यह पंचाचार भी बहुत महत्व रखता है।

पंचाक्षरी = यह "नमः शिवाय" मंत्र है। शिवजी को नमस्कार करना इस मंत्र का अर्थ है।

प्रसाद = भगवान की कृपा ; अष्टावरणों म से एक है।

षटस्थल = किसी भी वीरशैव के आध्यात्मिक जीमन के उत्थान के छः सोपानों की कल्पना की गई है। भक्तस्थल, माहेश्वरस्थल, प्रसादिस्थल, प्राणलिंगीस्थल, शरणस्थल और ऐक्यस्थल। भक्तस्थल में अविद्या से घेरे हुए जीवात्मा का मन पहली बार भगवान के चिंतन की ओर लगता है। माहेश्वरस्थल में जीवात्मा अपने में निहित अहम् की भावना व पंचक्लेशों को जीत लेती है और जग - भलाई करने के लिए हरे दिल से तुली रहती है। प्रसादिस्थल में जीवात्मा निष्काम

कर्म करने लगती है। भगवान की कृपा पात्र बन जाती है। हर चीज को भगवान की कृपा या प्रसाद समझने लगती है। प्राणलिंगिस्थल में जीवात्मा अपनी आत्मा (प्राणों) में ही परमात्मा की धुंधली छाया को पहचानने के कारण शिवयोग में लग जाती है। बाहर भटकना बंद कर देती है। शरणस्थल में जीवात्मा की भक्ति केवल भक्ति न रह कर उससे ऊँचा आत्म-त्याग का रूप धारण कर लेती है। वैष्णव धर्म में भक्ति को मुक्ति पाने के लिए परिपूर्ण व काफी नहीं समझा गया है। अतः उन्होंने प्रपत्ति (आत्म-त्याग) का मार्ग निकाला है। तो कह सकते हैं कि इस स्थिति में जीवात्मा परमात्मा के संपर्क में आ जाती है। शिवयोग से होते हुए इस शरणस्थल के अंतिम दशा तक पहुँचनेवाली जीवात्मा का वर्णन गीता के स्थितप्रज्ञा की अवस्था की याद दिलाता है। ऐक्यस्थल में जीवात्मा परमात्मा में पूर्णरूप से एकमेक हो जाती है और परमात्मा से भिन्न स्वरूप जीवात्मा का होता नहीं है। जीवात्मा परमात्मा में ऐक्य होजाती है। इसी को षटस्थल सिद्धांत भी कहते हैं।

सदाचार = शुद्ध नैतिक आचार; पँचाचारों में से एक।

सत्पधातु = रक्त, मज्जा, चरबी, माँस, हड्डी, रस व वीर्य।

सूतक = जाति, जनन, मरण, रजस्सु व उच्चिष्ठ नामक पाँचों सूतक वीरशैवों के लिए नहीं होते हैं।

अर्थ-कोश (ग)

निर्देश (Allusions)

कक्कय्या = यह जाति से डोहर था । बाद को यही एक शिव शरण बना ।शिव शरणों में इसकी बड़ी कद्र होती थी ।

कूडल संगम देव = कर्नाटक में विजापुर के पास कृष्णा और मालापहारी नामक दो नदियों के संगम स्थान पर एक शिवालय है । उस शिवालय में स्थित मूर्ति को कूडल संगम देव या कप्पडि संगम देव या संगमेश्वर कहते हैं ।

चंगला = आप सिरियाल श्रेष्ठी की धर्मपत्नी थीं। अपने पाँच वर्षीय पुत्र चिल्लाल को शाला भेजने के उत्सव के उपलक्ष्य में आप लागोंने जंगमों को इच्छा भोजन खिलाने की घोषणा की । यह समाचार नारद ने शिवजी को सुनाया । तो उन की भक्ति अजमाने के वास्ते शिवजीने जंगम रूप में आकर सिरियाल से मानव मांस माँगा ।

सिरियाल दंग रह गया । परंतु उसकी पत्नी चंगलाजी घबराई नहीं । तुरंत अपने पुत्र चिल्लाल के मांस को पका कर लाईं और हर्ष के साथ परोसने लगीं । तब शिवजी प्रसन्न हो गये । अपने दर्शन भी उन्हें दिये और उस लड़के चिल्लाल को प्राण भी ।

चिक्कय्या = जाति से यह एक नाई था और बसवेश्वर को चँवरी लगाने का काम करता था । एक दिन अचानक जमीन पर

चँवरि के गिरजाने से चिक्कय्याने अपने सिर को उतार कर उस के बालों से चँवरी बना कर बसवेश्वर को लगाया था। अतः शिवजी चिक्कय्या पर अत्यंत प्रसन्न हो गये।

चेन्नय्या = यह चोल देश में रहता था। जाति से यह अस्पृश्य था। यह बड़ा ही शिव भक्त था। यह शिवजी की पूजा गुप्तरूप से करते करते कोई साठ साल गुजार चुका था। तब शिवजी को चेन्नय्या की इस अप्रकट पूजा को प्रकट करने की इच्छा हुई। तो एक दिन शिवजीने जंगम रूप से चेन्नय्या के घर पहुँच कर और उसके साथ बैठ कर भोजन किया। चोलराजा से अर्पित नैवेद्य को शिवजी जो नित्य खाया करते थे, आज खा नहीं सके। इससे चोलराजा अत्यंत दुखी हो कर अपने प्राणत्याग करने गया। तब शिवजीने प्रत्यक्ष हो कर बताया कि उसका पेट, चेन्नय्याजी के यहाँ खा लेने से, भर गया है; अतः भूख नहीं है। तुरंत राजने उस शिव भक्त चेन्नय्या के घर जा कर, उसे प्रणाम किया। इसके बाद चेन्नय्या के साथ राजा भी उस मंदिर के भीतर पहुँच गया। चेन्नय्या को यह बात अखरने लगी। क्यों कि उसकी गुप्त शिवभक्ति आज प्रकट हो ही गई। इसलिए वह अपने प्राण त्यागने गया। परंतु शिवजी उस भक्त चेन्नय्या को पुष्पक में बिठा कर कैलास ले गये और वहाँ उन्होंने उसे एक गण पदवी दी।

दास = इस भक्त का पूरा नाम देवर दासिमय्या या जेडर दासिमय्या था। संसारी होते हुए कोई कैसे सन्यासी (विरक्त) का जीवन विता सकता है इस बात का निदर्शन इसने अपने जीवन से दिखाया।

कहा जाता है कि इसने बारह वर्षों तक परिश्रम करके एक छोटा सा अपूर्व वस्त्र बुना और उसे वेचने के लिए वेलवलपुर के सिद्धापुर की हाट में ले गया। कपड़ा अमूल्य होने के कारण कोई इसे खरीद नहीं सके। वहाँ से लौटते समय मार्ग में शिवजीने जंगम रूप में आ कर उस कपडे को माँगा तो दासने तुरंत दे दिया। वह जंगम उस सुन्दर कपड़े को दास के सामने ही फाड़ने लगा। जंगम के इस कार्य से दास को रंच मात्र भी दुख नहीं हुआ। क्यों कि दासने उस कपड़े को, भले ही वह वेशकीमती क्यों न हो, उस जंगम को दान में दे दिया था। अब उस कपड़े पर दास का कोई अधिकार न था। जंगम रूपी शिवजी अत्यंत प्रसन्न हो कर दास को एक मुट्ठी भर नाज दे कर चले गये। वह मुट्ठी भर का नाज घर पहुँचते पहुँचते खलिहान भर का हो गया। भगवान की इस लीला पर दास मुग्ध हो गया।

नंबी = इस भक्त का पूरा नाम सौंदर नंबी था। तिरसठ पुरातन शिव भक्तों में से इसका नाम अत्यंत आदार से लिया जाता है।

एक बार मंगलनाची के तिरुवालूर वाल्मीकेश्वर का मेला जमा था। उस समय नंबी के घर पर कई माहेश्वर लोग भीख माँग उठे। उनको भिक्षा में देने के लिए नंबी के पास कुछ भी नहीं था। तब नंबी ने अपने पिताजी के यहाँ मदद माँगी ; पर बेकार। इसलिए तिरकोल्ली के यहाँ किसान के रूप में बसनेवाले भगवान शंकर के यहाँ पहुँच कर उन्हें भाँति भाँति से मनाया। आशुतोष भगवानने प्रसन्न हो कर बहुत-सा धन नंबी को दिया। शिवजी के परिचारक भूतों पर उस धन को लदवा कर लौट ने के बाद नंबी ने उन माहेश्वरों को भूरि दान दिया।

पुरातन = कलिगणनाथ, रुद्रपशुपति, तिरुनीलकंठ, सौंदर नंबी आदि ६३ बुजुर्ग लोग तमिल देश में शैव सिद्धांत के उच्च कोटि के भक्त हुए। इन ६३ बुजुर्गों को शैव सिद्धांतवालोंने अपने मत के आचार्यों के पद पर बिठा कर अपना आदर व गौरव सूचित किया है। वीरशैव सिद्धांत वालोंने भी इन्हीं ६३ भक्तों को अपने मत के भी आचार्य मान कर उनका आदर व गौरव किया है। आज भी कई शैव व वीरशैव मंदिरों में इन तिरसठ बुजुगा की मूर्तियों को देख सकते हैं।

बोम्मय्या = यह एक बहुत बड़ा भक्त था और इस का पूरा नाम किन्नरी बोम्मय्या था। बसवेश्वर की कीर्ति को सुन कर उनके

यहाँ इस भक्त का आगमन हुआ। बसवेश्वरने इसका बहुत आदर किया। एक दिन भगवान शंकर के भोजन के वास्ते बोम्मय्या प्याज छीलने लगा। प्याज की गंध को बसवेश्वर पसंद न करने के कारण प्याज की निंदा की। बोम्मय्या को यह निंदा पसंद न आने के कारण रूठ कर दूर चला गया। बसवेश्वर को बड़ा खेद हुआ। भक्तप्रिय बसवेश्वरने उस बोम्मय्या को मनाने के लिए ही हर साल प्याज का त्योहार मनाने का निश्चय किया। तब बोम्मय्या खुश हो कर बसवेश्वर के पास फिर लौट आया।

श्वपचय्या = यह जाति से अस्पृश्य था; पर था बड़ा शिवभक्त।

एक बार श्वपचय्या वीरशैव मंदिर पर शिवजी को नैवेद्य चढ़ाने गया था। उसी वक्त वहाँ से खेचर (आकाश) मार्ग में सामवेदी नामक एक ब्राह्मण जाता रहा। शिवजी को चढ़ाये जाने वाले उस नैवेद्य को उस ब्रह्मण की आँखों से बचाने के लिए उसे श्वपचय्याने अपने जूतेसे ढँक दिया। यह देख कर सामवेदी ब्राह्मण हँस पड़ा तो उसके अपनी बगलों में खोंसी गई कुश की संदूकचियाँ जमीन पर खिसक पड़ीं। तब वह विप्र उस श्वपचय्या की महानता को मानकर सांष्टांग नमस्कार करके, उससे दीक्षा ले कर स्वयं उसका शिष्य बन गया। बाद को अपने सारे गाँववालों को भी श्वपचय्या से दीक्षा दिला करके वीरशैव बना दिया।

सिंधु वल्लाल = यह कावेरी पुर का निवासी था। अपनी शिव-भक्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध था। इस की भक्ति को परखने के लिए शिवजी ने एक जंगम के रूप में आ कर सिंधु वल्लाल से बिना संकोच उसकी पत्नी को ही माँगा। जंगम को प्रसन्न रखना भक्त का कर्तव्य था। सिंधु वल्लाल ने अत्यंत प्रसन्नता के साथ बिना हिचकिच किये अस्तु कह कर अपनी पत्नी उस जंगम को सौंप दी। रात को अचानक वल्लाल की पत्नी की जब नींद खुली तब उसने एक विचित्र दृश्य देखा। वह जंगम एक शिशु बन कर उसके स्तन्य पान कर रहा था। इसके बाद शिवजीने अपने दर्शन दे कर अपनी प्रसन्नता सिंधु वल्लाल पर दिखाई।

सिरियाल = यह जाति से वैश्य था; पर था बड़ा शिव भक्त। चंगलाजी इसी महाशय की पत्नी थीं।

यह सपत्नीक हो कर नित्य एक हजार जंगमों को इच्छा भोजन कराता था। तब नारदजी ने इसकी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए लगातार इक्कीस दिनों तक खूब पानी बरसादिया। तो रसोई के लिए ईंधन न मिलने पर इस सिरियाल श्रेष्ठीने अपने घर की सभी वस्तुओं को जला कर ईंधन का काम लिया और जंगमों को यथाविधि भोजन कराकर ही छोड़ा। भगवान शंकर इस भक्त पर अत्यंत प्रसन्न हो गये और नारद तो शर्मिंदा हो गये।

शुद्धि - पत्र

पृष्ठ संख्या	वचन संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	२	गाड़े	गाढ़ी
३	९	१	जन्मा था	जन्म लिया था
६	१९	२	शिवा	सिवा
९	२८	१	मुह	मुँह
१०	२८	७	यहीं	नहीं
१०	२९	४	मुमिरन	सुमिरन
१३	३८	५	शिवा	सिवा
२१	६२	४	सैकड़ो	सैकड़ों
२२	६५	६	वुकुनि	बुकनि
२३	६६	४	तुम्हारे सम्मान ने लगी थी	तुम्हारा सम्मान लगा था
२८	८३	१	की	किये
२९	८६	२	कंठार	कटार
३१	९१	४	उलज़्न	उलझन
३४	९८	१	के	की
३८	१०७	४	औदसीन्य	औदासीन्य
३९	१११	१	दूँग	दूँगा
४०	११४	३	कुतिया	कुत्ते
४१	११५	१	दाक्षण्य	दाक्षिण्य

पृष्ठ संख्या	वचन संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	१२८	३	बगले	वगलें
४७	१३१	७	शिवा	सिवा
५०	१३७	१	शिवा	सिवा
५४	१४८	२	वुकुनी	वुकनी
५६	१५३	६	में भरे	से भरी
५८	१५९	४	रहे	रही
६०	१६४	३	शिवा	सिवा
६१	१६८	३	अन्यो	अन्यों
६९	१८९	३	नाभीं	नाभी से
७२	१९५	४	पातल	पाताल
७२	१९६	३	समज्ञने	समझने
७७	२०७	५	दूध के	दूध का